मूर्तिपूजा, इस्लाम और भारत

अनवर शेख

हिन्दू राईटर्स फोरम
दिल्ली

मूर्ति पूजा—इस्लाम और भारत

अब यह सुस्पष्ट है कि मुहम्मद मूर्ति पूजा का विरोधी नहीं था वरन् वह दूसरी मूर्तियों से घृणा करता था क्योंकि वह स्वयं को उनका स्थानापन्न बनाना चाहता था। संक्षेप में वह अन्य सभी मूर्तियों को हटाकर अकेले अपनी की ही पूजा कराना चाहता था।

इस्लाम वास्तव में मूर्ति भञ्जक नहीं है यानी कि मूर्ति पूजा विरोधी नहीं है वरन् मूर्ति पूजक ही है जब तक कि वह केवल पैगम्बर मुहम्मद, उसके निकट सम्बन्धियों और साथियों तक सीमित है जिनकी उसकी आध्यात्मिक नेतागीरी में पूजा होती रहती है।

अनवर शेख

Scanned by CamScanner

हिन्दू मन्दिरों का विध्वंस क्यों?

मुसलमानों ने हिन्दू मन्दिरों का विध्वंस क्यों किया? क्या कोई कह सकता है कि यह भारत की सम्पत्तियों को लूटने, और भारत में कुरान के सन्देश (इस्लाम) के विस्तार के लिए एक बहाना मात्र था?

यद्यपि इन दोनों ही तथ्यों को बलपूर्वक कहने में कुछ सच्चाई है किन्तु वास्तविकता तो मनोवैज्ञानिक है जिसका मूल स्वयं पैगम्बर मुहम्मद की महत्वाकांक्षाओं में निहित है। यह कथन कुछ अस्पष्ट लग सकता है, अतः इसका स्पष्टीकरण होना आवश्यक हो जाता है।

विश्व की भौतिक व्यवस्था की भाँति, मानवजाति का सामाजिक ढाँचा भी श्रेणी बद्ध है यानी कि आधार में सबसे चौड़ा और शिखर पर सबसे छोटा। यही कारण है कि इस सिद्धान्त का पालन किये बिना किसी भी संगठन का निर्माण असम्भव है। जिस प्रकार करोड़ों की जनसंख्या वाला कोई भी देश बीस से तीस सदस्यों की सरकार द्वारा शासित होता है जो स्वयं एक शीर्ष नेता जैसे प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति या राजा द्वारा दिशा पाती है। इस सत्य का प्रतिनिधित्व सिकन्दर महान के चरित्र द्वारा हुआ था जो कि सार्वभौम राजा की एक सत्ता में विश्वास रखता था।

इस कथन का असली मतलब क्या है? इसका स्पष्ट अर्थ है कि मानव मात्र एक मनोवैज्ञानिक विशिष्टता से अभिभूत है जिसे कि प्रभुत्व की अन्तः प्रेरणा या 'हावी होने की चाह' कहा जा सकता है। यह चाह मानव मात्र को अकेले और सामूहिक रूप में दूसरों पर आधिपत्य स्थापित करने को प्रेरित करती है। इस चाह के व्यावहारिक रूप को राजनैतिक चुनावों के समय में देखा जा सकता हैं जब सभी प्रत्याशी चुनाव जीतने के लिए, अपने-अपने विकल्पानुसार सारे ढंगों का प्रयोग करते हैं। इनमें नैतिकता, उदारता, और दया की अवधारणायें उच्चतम स्वर से बोली तो जाती हैं, किन्तु इनके मूल में शैतानी, दुष्टता, कटुता और दुर्भावनायें भरी रहती हैं। प्रभुत्व की अन्तःप्रेरणा केवल एक ही व्यवहार को अपनाती है जिससे कि सफलता प्राप्त की जा सके।

Scanned by CamScanner

अतः 'शक्ति में ही औचित्य' होता है और 'सत्य की शक्ति' का विचार मन को समझाने के लिये एक धोखापूर्ण विनोद ही सिद्ध होता है।

हावी होने की चाह

प्रभुत्व की अन्तःप्रेरणा या हावी होने की चाह, वास्तव में प्रत्येक जीव धारी की अपनी विशिष्टता होती है जिसका दर्शन विरोध प्रदर्शन में होता है। उदाहरण के लिये मुर्गी के बच्चों को ही ले लीजिये। मुर्गी का 'अ' बच्चा, 'ब' मुर्गी के बच्चो को सिर्फ यह दिखाने के लिए चोंच मारता है कि वह अधिक शक्तिशाली है। इसी प्रकार उसी कारणवश 'ब' (मुर्गी का बच्चा) दूसरे बच्चे 'स' को चोंच मारता है। इतना ही नहीं यदि 'स' अधिक शक्तिशाली हो तो वह लौटकर 'ब' पर अपनी शक्ति प्रदर्शन के लिये चोंच मार सकता है ताकि उसका अधिक शक्तिशाली होना प्रमाणित हो जाये।

हावी होने की चाह के अभाव में कोई भी व्यक्ति शिखर पर पहुँचने की कोशिश नहीं करेगा और न शान्ति व्यवस्था करना चाहेगा, न प्रतिस्पर्धा करना चाहेगा। प्रभुत्व की अन्तःप्रेरणा का एक नकारात्मक पहलू यह भी है जो अक्सर उसकी दीप्ति को अन्धकारमय कर देता है जो कि हिन्दू मन्दिरों के विध्वंस में देखा जा सकता है। बड़े महान देश भी, विदेशी आततायियों के हाथों इस प्रकार के दुर्भाग्य का सामना कर चुके हैं। इंग्लैण्ड भी वाइकिंग्स के हाथों ढ़ाई सौ वर्षों से अधिक समय तक लूट, अत्याचार और विध्वंस का शिकार रहा। विदेशी आक्रामकों द्वारा अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिये तलवार और आग्नेय आयुधों द्वारा अन्य राष्ट्रों पर दासता थोपी गई है।

हावी होने की चाह का एक असाधारण पहलू यह भी होता है कि यह अपने स्वामी के निधन के साथ समाप्त नहीं हो जाती है। एक सांसारिक राजा के शरीरान्त के बाद यह चाह भी समाप्त हो सकती है, किन्तु उन लोगों के सम्बन्ध में जिन्हें देवदूत कहा जाता है, यह अमर सिद्ध होती है। **एक पैगम्बर अपनी कब्र से भी लोगों का मार्गदर्शन करता है कि वे क्या करें और क्या न करें।** वह उन नियमों के माध्यम से सब कुछ कर पाता है जिन्हें वह दैवी होने का दावा करता है और उन्हें अपने पीछे छोड़ जाता है। जो इन विधानों का पालन करता है, वह 'जन्नत' जाने का अधिकारी हो जाता है और जो उनका पालन नहीं करता है वह 'दोजख़' का अधिकारी हो जाता है। निश्चय

Scanned by CamScanner

ही ये नियम पैगम्बर के दिमाग़ की ही उपज होते हैं जो उसके अनुयायियों के मस्तिष्कों को उसके सामर्थ्य एवम् शक्ति से पुरस्कार और दण्डों की व्यवस्था द्वारा प्रभावित करते हैं, भले ही ये पुरस्कार और दण्ड कितने ही काल्पनिक क्यों न हों?

इस विषय में चौदह सौ वर्ष पहले बनाया गया इस्लामी कानून इसका एक उदाहरण है। इस कानून का पालन करने के लिये पचपन वर्ष पहले पाकिस्तान का निर्माण हुआ था किन्तु वहाँ भी इस कानून के व्यवहार में आने की प्रतीक्षा ही बाकी है। इसका कारण अति सरल है क्योंकि यह कानून सर्वथा अव्यवहारिक है। वास्तव में, पाकिस्तान में, इंग्लैण्ड का सामान्य कानून ही प्रचलन में है जो कि मुस्लिम परम्पराओं के सर्वथा विपरीत ही है। इस्लामी कानून मुहम्मद की विरासत है, जो चाहती है कि उसके अनुयायी उस कानून संहिता का पालन कर उसकी महानता को स्वीकार कर लें। ये कानून दैवी उत्पत्ति वाले तो कदापि नहीं हो सकते, क्योंकि यह ब्रह्माण्ड और जो कुछ भी प्राणवान् है, लगातार वह सह- सामयिक व्यवस्था वाले परिवर्तन के नियम से सञ्चालित होता है। ऐसा लगता है कि अल्लाह अनुभव नहीं करता कि जीवधारी मनुष्य परिवर्तनशील विश्व में रहते हैं और उन्हें चौदह सौ वर्ष पहले बनाए गए स्थाई स्वभाव के कानून की आवश्यकता नहीं है। ईश्वर मानव को स्वतन्त्र चिन्तन की बुद्धि देकर, जिसके द्वारा वे परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुकूल कानून बना सकें, वह ईश्वर मानव की समस्याओं से पूर्णतः असम्बद्ध, पुरातन कानूनों के पालन की विवशता प्रस्तुत कर मानव के मध्य हस्तक्षेप नहीं कर सकता था।

ऊपर लिखी विवेचना से कोई भी यह नतीजा निकाल सकता है कि पैगम्बरपन हावी होने की चाह का सर्वाधिक प्रदर्शन है। चूँकि यह पैगम्बर की हावी होने की चाह ही थी जिसके कारण हिन्दू मन्दिरों और संस्कृति का विध्वंस किया गया था। इसलिये उचित होगा कि हावी होने की चाह की रचना और उद्देश्य का गहराई से अध्ययन किया जाये।

पैगम्बर और पैगम्बरवाद

पैगम्बर एक ऐसा व्यक्ति होता है जो दावा करता है कि वह भूमि पर ईश्वर का कार्य वाहक अधिकारी है। वह बल देकर कहता है कि वह सर्वशक्तिमान परमेश्वर का सन्देशवाहक है जो इस ब्रह्माण्ड का रचयिता है और जो बुराई

Scanned by CamScanner

के विरुद्ध संघर्ष कर के मानव मात्र में अच्छाई स्थापित करना चाहता है। पैगम्बर बल देकर कहता है कि परमात्मा उसे छोड़कर, किसी भी अन्य व्यक्ति के साथ सीधा सम्वाद नहीं करता है। चूंकि वही दैवी माध्यम है, अतः जो कोई भी सर्जनहार तक पहुँचना चाहता है उसे उसके माध्यम को ही स्वीकार करना चाहिये अन्यथा वह मृत्यु को प्राप्त करे। इतने पर भी पैगम्बर घोषित करता है कि प्रशंसा (पूजा) तो ईश्वर की ही होती है, वह तो उसका एक मात्र विनम्र सेवक ही है, और वह वही करता है जो उसका स्वामी कहता है।

निस्सन्देह पैगम्बरपन एक चमत्कारी योजना है जिसके माध्यम से, एक मनुष्य के आवरण में वह अपने आपको परमेश्वर के रूप में प्रतिपादित करता है। एक पैगम्बर अपने आपको, परमेश्वर का प्रतिनिधि होने का आग्रह कर वास्तविकता से एकदम भिन्न, व्यवहार के अनुकरणीय आदर्श का प्रमाण पत्र देकर, अपनी पवित्रता को जबरदस्ती थोपता है। मान्यता यह रहती है कि परमेश्वर किसी निम्नस्तरीय चरित्र वाले व्यक्ति को अपना प्रतिनिधि नियुक्त नहीं करता है। इस चमत्कारी योजना का एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग यह भी है कि पैगम्बर बलपूर्वक घोषित करता है कि उसका अपना कोई, कैसा भी उद्देश्य निहित नहीं है; और वह जो कुछ भी करता है वह अपने स्वामी की आज्ञानुसार ही करता है। यह तटस्थ दृष्टिकोण लोगों को पैगम्बरके उद्देश्य के प्रति आश्वस्त कराने के लिए एक तीव्र मनोवैज्ञानिक अस्त्र सिद्ध होता है।

जैसे ही हम पैगम्बर के दावे के वास्तविक स्वभाव की समीक्षा करते हैं, तो उसकी पवित्रता की आभा एकदम फीकी पड़ जाती है। यदि परमेश्वर सृष्टि का रचयिता है और उसे मानव की पवित्रता की इतनी ही चिन्ता है तो उसे मानव स्वभाव को ऐसे स्वरूप का बनाया होता कि वह कोई त्रुटि ही नहीं करता। ईश्वर, एक मनुष्य, जो अपने आपको पैगम्बर कहता है, की सदाशयता पर निर्भर रहता है, वह एक खिलौना मात्र से अधिक नहीं हो सकता है, और उस के पास इतनी शक्ति नहीं है कि वह पैगम्बर को, उसके ही शब्दों को स्वेच्छानुसार, तोड़ने-मरोड़ने से रोक सके। यह एक तर्क सिद्ध निष्कर्ष है, कि यदि ईश्वर अन्य लोगों को अपनी मनमानी करने से नहीं रोक सकता है तो वह पैगम्बर, जो निश्चयात्मक रूप से अधिक चतुर और दृढ़ निश्चय वाला मनुष्य होता है, को उसके मनमाने क्रिया कलापों से कैसे बलात् रोक सकेगा? ऐसा ईश्वर जो एक मनुष्य पर 'निर्भर' रहता है, तो वह उस मनुष्य से निचले

Scanned by CamScanner

स्तर का होता है। पैगम्बरपन का यही वास्तविक उद्देश्य होता है। पैगम्बर एक ऐसा मनुष्य होता है जिसकी महत्वाकांक्षा इतनी होती है कि उसे परोक्ष रूप में ईश्वर माना जाये क्योंकि पैगम्बरपन की घोषणा ईश्वरपन होने की घोषणा, की तुलना से कहीं सरल है।

स्पष्ट शब्दों में यह कहा जाए तो पैगम्बरपन की व्यवस्था सत्य के स्वभावानुसार उसके प्रसार के लिये उपयुक्त नहीं है। ईश्वरीय सन्देश के संवहन के लिये पैगम्बर का एकमात्र माध्यम होना भी ईश्वरीय उद्देश्य को सीमित कर देता है। एक व्यक्ति कितना ही चतुर क्यों न हो वह सारे विश्व तक नहीं पहुँच सकता। विशेषकर, मध्य युग के सन्दर्भ में यह और भी अधिक सत्य है। ईश्वरीय सन्देश से मानवता को अवगत कराने के लिये, यदि ईश्वर ने मानव को जन्म से प्रत्यक्ष सम्वाद प्राप्ति का कोई और दूसरा तरीका दे दिया होता तो वह अधिक प्रभावी हुआ होता। चूँकि उसने ऐसा नहीं किया है, अतः उसे किसी पैगम्बर की आवश्यकता नहीं है जो कि सामाजिक संघर्ष, पारस्परिक घृणा और युद्धों के कारण रहे हैं। मानव को विवेक और इच्छा शक्ति जन्म से ही प्राप्त हैं। अतः वह अपनी जीवन नैय्या को स्वयँ पार लगाने में समर्थ है। पैगम्बरों को भेजकर, मानव विवेक एवं स्वतन्त्र चिन्तन को बलात् बाधित करना, स्वयँ ईश्वर का विरोधाभास है। वस्तुतः पैगम्बरपन की अवधारणा ही ईश्वरत्व का उपहास मात्र है।

निस्सन्देह, एक पैगम्बर घोषित करता है कि सारी स्तुति (पूजा) ईश्वर के ही लिये है और वह स्वयँ भी ईश्वर की स्तुति व पूजा करता हुआ दिखाई देता है। वह ईश्वरत्व का दो कारणों से मज़ाक है। पूजा या प्रशंसा निम्नतम कोटि की चापलूसी ही होती है, और यह सर्व विदित है कि चापलूसी करने वाला एक अति हीन, चालाकीपूर्ण और घृणास्पद व्यक्ति होता है क्योंकि वह दूसरों के सम्मान, शालीनता, प्रतिष्ठा और विशिष्टता को नष्ट करने की सोचता है और उसके लिए उन्हें विवश करता है कि वे स्वयं निम्न स्तरीय व्यवहार, हीन भावना और अनुचित कार्यों में लिप्त हो जायें। एक स्वाभिमान रहित व्यक्ति ऐसा ही होता है जैसा कि एक छँटे हुए पंखों वाला पक्षी जो अधिक ऊँचे उड़ पाने की क्षमता खो देता है। जीवन का उद्देश्य सच्चरित्र नैतिकता, उच्च इच्छा शक्ति, आत्मा या व्यक्तित्व को महानता के साथ स्वाभिमान को ऊँचा उठाना होता है, जो सीधा-सच्चा जीवन और साथी जीवधारियों की सेवा

Scanned by CamScanner

भावना के उद्देश्य से मिलता है, न कि असीमित उद्दण्डता वाले काल्पनिक ईश्वर के सामने रोने, रेंगने, सेवा करने या गिड़ गिड़ाने से।

मूर्ति पूजा

दूसरा कारण अधिक गम्भीर है, किन्तु बड़ी चालाकी भरा है। निश्चय ही यह एक मनोवैज्ञानिक चालबाज़ी का कदम है। सत्य तो यह है, जैसा हम सभी जानते हैं कि भावात्मकता की अपेक्षा ठोस पदार्थ ध्यान को अधिक मात्रा में और अधिक सरलता से केन्द्रित कर देता है। यही कारण है कि शिक्षा के आधुनिक ढंगों में, मौखिक शिक्षाओं पर निर्भर रहने की अपेक्षा, खिलोनों, चित्रों, रेखा चित्रों आदि का प्रयोग किया जाता है ,क्योंकि मौखिक शिक्षा दुरुह होने के कारण कम प्रभावी होती है और अक्सर समझ से परे हो जाती है। ठोस पदार्थ, तथ्यों और वास्तविकताओं को समझने के लिये अधिक सहायक होते हैं। मूर्ति पूजा के पीछे यही दर्शन विद्यमान है। सभी भक्त जानते हैं कि मूर्ति तो मात्र एक पत्थर, एक लकड़ी का टुकड़ा या मिट्टी का लौन्दा ही होता है, किन्तु उनकी आकृतियाँ वास्तविकता के अर्थ को समझने में सहयोगी होती हैं। मूर्ति सत्य का प्रतीक मात्र होती है। यद्यपि ऋग्वेद आदि में मूर्ति पूजा और मन्दिरों का कोई उल्लेख नहीं है किन्तु मेरी मान्यता है कि मूर्तियों की पूजा के संगठित प्रयास का प्रारम्भ भारत में ही हुआ है। इसका कारण है कि वैदिक लोगों की मान्यता थी कि प्रत्येक प्राकृतिक क्रिया पदार्थ जैसे प्रकाश, बादल, हवा, अग्नि आदि की उत्पत्ति के पीछे कोई एक दैवी शक्ति अवश्य विद्यमान है। उस शक्ति को वे देवता या देवी पुकारते और उसकी पूजा करते रहे।

इन भौतिक पदार्थों में दृश्यमानता है; प्रकाश या बिजली देखी जा सकती है; गरज सुनी जा सकती है, और वायु अनुभव की जा सकती है। इन प्राकृतिक प्रक्रियाओं के पीछे छिपे रहने वाले देवता और देवियों की ये झलकियां है। इस प्रकार अन्त में सत्य को निरूपित करने के लिये मूर्तियों का आविर्भाव हुआ। सामान्य पूजक ने मूर्ति को ही ईश्वर की संज्ञा दे दी। चूँकि प्रत्येक मूर्ति किसी विशिष्ट प्राकृतिक शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है, वह व्यक्तिगत रूप में दैवी शक्ति की पूर्णता का प्रतिनिधित्व नहीं करती है। यद्यपि भक्त लोग जिस किसी भी मूर्ति की पूजा करते थे उसकी दिव्यता के विषय में उत्साही थे। अपने

Scanned by CamScanner

विश्वास के कारण कि वे भी अन्य प्राकृतिक शक्तियों का प्रतिनिधित्व करती हैं, दूसरे भक्तों की मूर्तियों की निन्दा नहीं किया करते थे। यह ही है जिसके कारण सर्वेश्वरवाद का जन्म हुआ यानी कि वह अवधारणा जिसके अन्तर्गत ईश्वर का सम्पूर्ण विश्व से सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और अन्ततोगत्वा इससे सभी देवताओं की पूजा स्थापित हो जाती है। ईश्वर का एकत्व एक उदीयमान तत्त्व हो गया, और लगभग प्रत्येक देश ने, भारत के हिन्दू मंदिर प्रारुप का जिसमें सभी देवताओं को एक साथ रखकर पूजा जाता था, अनुसरण किया। इस प्रकार देवताओं के मध्य ईर्ष्या-द्वेष के लिये कोई स्थान नहीं रहा, और यदि कुछ था तो भी, उसमें पैदायशी पांथिक शत्रुता और हत्याकाण्ड की शक्ति का अभाव ही था। वास्तव में मूर्तियों के सह-अस्तित्व के कारण ही **''जीयो और जीने दो''** की भावना प्रोत्साहित हुई।

पैगम्बरपन की व्यवस्था भी बहुत कुछ मूर्तियों के ही समान है, जहाँ कि दैवी शक्ति या उसके पीछे छिपी मूर्ति के ज्ञान का वे दृश्यमान सहयोगी या चिह्न का काम करते हैं। परिणामस्वरूप लोग मूर्ति की ही पूजा करते हैं, न कि सम्बंधित देवता की। जब एक व्यक्ति अपने को पैगम्बर होने का दावा करता है तो वह अपने आपको परछाईं, और ईश्वर को वास्तविक के रूप में प्रस्तुत करता है। किन्तु जैसे ही उसमें असीमित प्रभुत्व की चाह पैदा हो जाती है वह अति असाधारण रीति से इस वरीयता के क्रम को बदल देने के लिये व्यग्र हो जाता है कि लोग सोचने लगें कि परछाईं ही वास्तविकता है, और वास्तविकता परछाईं मात्र ही है। सम्बन्धों में इस विपरीत अनुपात को लाना ही पैगम्बरपन का मूल लक्ष्य होता है। मूर्ति पूजा के साथ अन्तर है; (अ) लोग मूर्ति की अज्ञानवश पूजा करते हैं, (ब) वैकल्पिक रूप से वे जानते हैं कि ये मूर्तियाँ मात्र चिह्न या दृश्य सहयोगी पदार्थ हैं, उनमें वास्तविक दैवी तत्व नहीं है।

मैं इतना अवश्य कहना चाहूँगा कि मूर्ति पूजा में ढोंग मात्र भी नहीं होता है क्योंकि यह या तो अज्ञान वश की जाती है अथवा मूर्ति को मात्र दृश्यमान सहयोगी सामग्री माना जाता है। दूसरी ओर पैगम्बरपन में निष्ठा का सर्वथा अभाव ही होता है क्योंकि पैगम्बर का लक्ष्य स्वयं का मानवता के आवरण को हटाये बिना ही, ईश्वर के रूप में पूजा जाने का होता है। यह पैगम्बर के

Scanned by CamScanner

चमत्कारों को इस सीमा तक बढ़ा चढ़ाकर प्रदर्शन से किया जाता है कि वह वास्तविकता के रूप में दिखने लगता है, और ईश्वर पीछे हटकर छाया बन जाता है। शक्ति और पूजा के सन्दर्भ में, क्रमों का यह परिवर्तन, मूर्ति पूजा के सिद्धान्तों और व्यवहारों की ही नकल हो जाता है जिसमें लोग **मूर्ति को ही वास्तविकता मान लेते हैं, और वास्तविकता के बारे में पूरी तरह भूल जाते हैं।**

यहूदीमत (जूडाइज़्म) और मूर्ति पूजा

चूंकि इस्लाम यहूदीमत की ही उपशाखा है, अतः यहूदी राष्ट्र और उसके दर्शन के संस्थापक मोज़ेज़ (मूसा) का उदाहरण देने से विषय को स्पष्ट करने में सहायता मिलेगी। चार सदियों तक, निर्दयता और कठोर श्रम के शिकार यहूदियों को, मिश्र से बाहर निकालने वाला व्यक्ति मूसा ही था। उन्होंने निरन्तर यातनाओं, उत्पीड़न, तङ्गी, अत्याचारों और निरंकुशता के कारण नैतिक तेजस्विता और बौद्धिक क्षमता खो दी थी। दीर्घ कालीन दासता के कारण वे, समर्पित और सुझावों को स्वीकार करने वाले हो गये थे। मूसा, जिसका मिश्र में राजकुमार के रूप में भरण पोषण हुआ था, वह उच्च क्षमताओं से परिपूर्ण ही नहीं था वरन् उसमें हावी होने की विशाल चाह थी। इन गुणों के साथ-साथ उसे अपने यहूदी लोगों से अपार विस्मयकारी प्रेम था जिन्हें वह एक महान् राष्ट्र के रूप में तैयार करना चाहता था। इस असाधारण मनुष्य में, अपनी महत्त्वाकांक्षाओं और राष्ट्रीय महानता को, सामञ्जस्य युक्त दिशा देने की भी क्षमता थी।

जैसा यहूदी इतिहास दिखाता है कि मूसा ने अपने आपको कानून का दाता घोषित कर अपने आपको, व्यवहार के आदर्श के रूप में, प्रस्तुत किया, किन्तु उसने यह नहीं कहा कि उसने कानूनों का आविष्कार किया है। पुरानी सैमिटिक परम्पराओं का अनुसरण करते हुए उसने घोषित किया कि ईश्वर ने उसे अपना कार्यवाहक (पैगम्बर) नियुक्त किया है, जिसने अपनी इच्छा, कानूनों के रूप में प्रगट की है, जिन्हें दैवी प्रकोप से बचने के लिए पालन करना ही चाहिये। वह भली भांति समझता था कि यहूदियों को, जो उस समय एक भीड़ से अधिक नहीं थे, एक महान् राष्ट्र के रूप में तब तक नहीं बदला जा सकता, जब तक कि उनमें एकरूपता कर, एक निश्चित मात्रा में विकसित नहीं कर दिया जाता है। इसलिये उसने घोषित किया :

Scanned by CamScanner

(1) याहोवा इज़राइल (यहूदियों) का परमेश्वर है और यहूदी उसके चुने हुए और प्रिय लोग हैं।

(2) यहूदी राष्ट्रवाद के आधार स्तम्भ याहोवा को सर्वोच्च परमेश्वर बनाने की दिशा में उसने घोषणा की और आश्वासन दिलाया कि स्वामी याहोवा उनका साथ नहीं छोड़ेगा (**डयूटरोनोमी 4 : 31**) बशर्ते कि वे उसके कानून का पालन करते रहें। पहला आदेश कहता है कि **"तुम मेरे अलावा किसी अन्य देवता को स्वीकार नहीं करोगे।"**

बाइबिल की घोषणा इससे भी आगे जाती है कि "परमेश्वर याहोवा के लिये सर्वाधिक प्रेम सुरक्षित रखना है, और तुम अपने स्वामी याहोवा को अपने पूर्ण हृदय से, अपनी पूर्ण आत्मा से और अपनी पूर्ण शक्ति से प्रेम करोगे।" (**डयूटरोनोमी 6 : 5**)

यही सुनिश्चित करने के लिये कि उसका दैवी आदेश गम्भीरता पूर्वक स्वीकार किया जाए, **डयूटरोनोमी** (5 : 9) स्पष्ट करती है कि यहूदी परमेश्वर एक ईर्ष्यालु परमेश्वर है जो किसी के पिता के अनुचित व्यवहार के अपराध का परिणाम उसकी सन्तान पर, यहाँ तक कि तीसरी या चौथी पीढ़ी पर भी डालता है जो उससे (गॉड से) घृणा करते हैं यानी कि याहोवा को छोड़कर किसी अन्य देवता की पूजा करते हैं।

यहूदियों के हृदयों में इस सन्देश की और अधिक व्यापकता के साथ प्रभावित करने के उद्देश्य से **एक्सोडस** (20 : 22) घोषित करती है, **"जो कोई स्वामी योहावा को छोड़कर अन्य किसी भी देवता की पूजा करेगा वह पूरी तरह नष्ट कर दिया जायेगा।"**

यहाँ ऐसा लगता है कि मैं स्वयं विरोधाभास की बातें कर रहा हूँ, क्योंकि मूसा परमेश्वर के लिये ही सर्वाधिक सम्मान और अलौकिक शक्ति निर्धारित कर रहा है, न कि अपने लिये। यही है पैगम्बरपन या दैवी सन्देश के प्रगटीकरण की अवधारणा की कुटिलता। परमेश्वर का विषय भावनात्मक है। अतः जन साधारण द्वारा सरलता से समझा नहीं जा सकता है। क्योंकि उन्हें किसी दृश्य-मान सहयोगी सामग्री की आवश्यकता पड़ती है जिसके माध्यम से वे उस परमेश्वर को उचित रीति से समझ सकें। एक बार लोगों का ईश्वर में विश्वास स्थापित हो जाने पर पैगम्बर जो उसे पाने का एक मात्र माध्यम होता है, अपने आपको उस दैवी शक्ति ईश्वर के सङ्केत चिह्न के रूप में उसी प्रकार प्रस्तुत, और प्रतिपादित कर देता है जैसे कि एक मूर्ति, ईश्वर का

Scanned by CamScanner

प्रतिनिधित्व करती है। दाँव की बात यह है कि पैगम्बर प्रत्यक्षतः दैवी सम्मान के प्रति उदासीन दिखाई देता है, इतने पर भी वह अपने आपको इतनी पवित्रता प्रदान करता है कि वह ईश्वर से भी बड़ा लगने लगता है और लोग वस्तुतः ईश्वर को छोड़कर उसी की पूजा करने लगते हैं और ईश्वर शिष्टाचार मात्र के लिये ही श्रेणी में ऊपर होता है। **इस प्रकार वास्तविकता यही है कि मूर्ति या वह सभी कुछ जो कुछ भी पूजनीय है, उससे ईर्ष्या करने वाला पैगम्बर ही होता है। इसी कारण से वह अपनी मूर्ति को छोड़ कर अन्य किसी मूर्ति को नापसन्द करता है, और उन दूसरी मूर्तियों के विनाश के लिये दुराग्रह करता है।**

जैसा कि कहानी है कि यहूदियों द्वारा गलाई गई धातु से बने बछड़े की मूर्ति की पूजा ने याहोवा में ईर्ष्या जागृत कर दी। वह दैवी महिमा के साथ प्रगट हुआ और अपने उबलते हुए क्रोध में इज़रायली बच्चों को खा जाने को संकल्प बद्ध हो गया। इस घटना ने मूसा को ईश्वर से भी ऊपर, अपनी श्रेष्ठता प्रदर्शित करने का अवसर दिया। मूसा ने याहोवा से कठोरता पूर्वक कहा कि वह अपने ही लोगों के प्रति एक दुष्टता युक्त कार्य करने जा रहा है, और यह कहकर याहोवा को शर्मिन्दा किया कि मिश्रवासी कहेंगे कि उसने अपने लोगों का विनाश कर दिया। आखिरकार याहोवा ने ही तो सीमा उल्लंघन कर मिश्र जाकर यहूदियों को छुड़ाया था।

मूसा ने अपने स्वामी को इस दुष्टता को त्याग देने और पछतावा करने का आदेश दिया था (**एक्सोडस 32 : 12-14**)। क्या ही आश्चर्यजनक घटना है! ईश्वर ने मनुष्य के सामने समर्पण कर दिया। इतने पर भी यहूदी कहते हैं कि उनका पंथ एकेश्वरवादी है। मैं बलपूर्वक यह और कहना चाहूँगा कि केवल यही पहला अवसर नहीं है, जब पैगम्बर मूसा ने सब लोगों के सामने याहोवा को तिरस्कृत किया है। इसी प्रकार के एक अन्य घटनाक्रम में, बात उस समय की है जब यहूदी लोग प्रतिज्ञापित भूमि (प्रौमिज़्ड लैण्ड) का अपमान कर मिश्र वापिस जाने का आग्रह करते हैं तो याहोवा का क्रोध, उबल कर पराकाष्ठा पर पहुँच गया और उसने सभी को वध कर देने की धमकी दे डाली। इसी अवसर पर मूसा का पदार्पण होता है। वह अपने स्वामी (गॉड) को सार्वजनिक रूप में शर्मिन्दा करता है, और याहोवा सदैव की भांति मूसा के आगे समर्पण कर देता है। (**गिनती 14 : 11-20**)

उपर्लिखित घटनाओं के अलावा, ऐक्सोडस के अध्याय 32 में वर्णित निम्नलिखित इस घटना पर भी ध्यान किया जाना चाहिये।

Scanned by CamScanner

चूंकि मूसा को परमेश्वर (याहोवा) के पास से वापिस आने में अधिक विलम्ब हो गया, तो यहूदियों ने अपने सुनहरी कर्णफूलों का दान करके पूजा करने के लिये पिघली हुई धातु से एक बछड़ा बना लिया। याहोवा ने मूसा को शीघ्रता के साथ अपने लोगों के पास वापिस जाने को कहा जिन्होंने अपने आपको पथभ्रष्ट कर लिया था। जैसे ही मूसा अपने डेरे पर आया उसने पाया कि लोग बछड़े के चारों ओर खुशी के मारे नाँच रहे थे। मूसा के क्रोध की कोई सीमायें नहीं रहीं। उसने बछड़े को आग में जला दिया और पीस कर उसका बुरादा कर दिया और उसे पानी में घोल कर इज़राइलवासियों (अपने यहूदी बच्चों) को पीने के लिए विवश कर दिया।

यदि मूसा उस बछड़े को खड़ा छोड़ देता तो वह बछड़ा देवत्व का चिह्न बन जाता और अन्ततोगत्वा दैवी शक्ति बन जाता। मूसा इस स्थिति को स्वीकार नहीं कर सकता था क्योंकि उसने ईश्वर के एक मात्र मध्यस्थ होने का पद स्वीकार कर लिया था।

इस्लाम और मूर्ति पूजा

पैगम्बर मुहम्मद ने इस सैमिटिक परम्परा का बड़े उत्साह के साथ पालन किया, जो बार बार आग्रह करता था कि इस्लाम कोई नया पंथ नहीं है वरन् वही है जिसको आदम, नहू, इब्राहिम, मूसा और जीसस ने स्थापित किया था। उसने अपने आपको पंथ का अन्तिम उपदेशक कहा। **वह मूर्तियों से घृणा करता था, और उनके विनाश को उचित ठहराता था क्योंकि वह स्वयं अपने आपको एक मूर्ति के रूप में प्रस्थापित कर अपनी ही मूर्ति की पूजा कराना चाहता था।** यह सिद्धान्त अटपटा लगता है किन्तु सत्य है। यह समझ लेने के लिये हमें ध्यान रखना चाहिये कि प्रारम्भ में अल्लाह, की काबा में एक मूर्ति ही थी, जहाँ पैगम्बर के कुरेश कबीले के लोग उसकी पूजा किया करते थे। मैं इस बात का स्पष्टीकरण बाद में करुंगा कि अल्लाह की पूजा ने ही मुहम्मद को अपनी पूजा कराने के लिये प्रोत्साहित किया था। उसने अल्लाह की मूर्ति **के साथ काबा की** सारी मूर्तियों का नाश कर दिया, फिर भी उसने *अल्लाह* का स्तर बढ़ाकर सर्वशक्तिशाली ईश्वर के समान बना दिया जो सर्वशक्तिशाली, सृष्टि का रचयिता तथा सर्वशक्ति सम्पन्न है। उसने यह सब अल्लाह की मूर्ति के स्थान पर, स्वयँ अपने को दैवी चिह्न के रूप में, प्रतिस्थापित करने के लिये

Scanned by CamScanner

ही किया। वह यह बात भली भाँति जानता था कि वह देवत्व का ईश्वर चिह्न है यानी कि वह मूर्ति है जो अन्ततोगत्वा ईश्वर के रूप में पूजी जानी है। अपने इस दावे के सम्बन्ध में मैं अब कुछ प्रमाण देना चाहूँगा।

1. मूसा के आदर्श का अनुसरण करते हुए उसने दावा किया कि इस्लामी गॉड-अल्लाह ने उसे पैगम्बरपन स्वीकार कर लेने का आग्रह किया है।

(सहीह मुस्लिम हदीस 301 खण्ड 1)

2. प्रारम्भ में लोगों पर प्रभाव जमाने के लिए उसने कहा कि इस विषय में उसका कोई निहित स्वार्थ नहीं है। उसने बलपूर्वक कहा कि **"अल्लाह को छोड़ अन्य कोई ईश्वर नहीं है और मुहम्मद उसका पैगम्बर है।"** यह इस्लाम का मूल सिद्धान्त है जिसे शहादा कहा जाता है। जब तक उसके अनुयायियों की संख्या अधिक नहीं हो गई ताकि उसके अधिराज्य की गारण्टी हो सके, तब तक वह यही प्रतिपादित करता रहा कि वह तो एक मरण-धर्मा और अल्लाह का सेवक है जिसे अल्लाह के सन्देश को देने का ही कर्तव्य पालन करना है। प्रमाण आप स्वयं ही देखिये।

(अ) 'कुरान पैगम्बर को एक सेवक ही कहता है।' (2 : 23)

(आ) 'वह (मुहम्मद) अनदेखे को नहीं जानता।' (6 : 50)

(इ)'उसके पास चमत्कार दिखाने का शक्ति नहीं है।' (13 : 5)

(ई)...'मुझे तो अल्लाह की सेवा करने का ही आदेश मिला है न कि उसके साथ किसी अन्य को शरीक करने का। मैं उसे ही पुकारता हूँ और मुझे उसी की ओर लौटना है।' (13 : 36)

(उ) पैगम्बर मरणधर्मा होने के कारण अल्लाह के पुरस्कार और दण्ड का समान अधिकारी है। 'यदि वह चाहे तो तुम पर कृपा करे और यदि वह चाहे तो तुम्हें यातना दे। और(नबी!) हमने तुझे उन पर कोई हवालेदार बनाकर नहीं भेजा है (17 : 54)

(ऊ) अल्लाह की पैगम्बर को ताकीद है कि अल्लाह के साथ किसी अन्य 'इलाह' (पूज्य) को न जोड़ो नहीं तो निन्दित और ठुकराया हुआ 'जहन्नम' में झोंक दिया जायेगा। (17 : 39)

अब तक पैगम्बर ने यही दावा किया है कि वह मात्र एक मरणधर्मा मानव ही है जिसे अल्लाह ने लोगों को अपना सन्देश प्रसारित करने का उसे आदेश ही दिया है। इस युक्ति की उसे बेतहाशा आवश्यकता थी जिससे कि वह लोगों

Scanned by CamScanner

को समझा सके कि वह मात्र अपने कर्त्तव्य का ही निर्वाह कर रहा है। इस प्रकार लोगों का उसकी बात को सुनना और विश्वास करना सरल हो जाता है। किन्तु जैसे ही वह शक्तिशाली और आत्म निर्भर हो जाता है, वह इस शैली को त्याग देता है और अपने आप को अल्लाह का एक अखण्डनीय भाग घोषित कर देता है। जैसे:—

(ए) केवल ईश्वर को मानना पर्याप्त नहीं है : "अल्लाह और उसके 'रसूल' की आज्ञा का पालन करो। यदि वे मुंह मोड़े तो जान लो कि अल्लाह क़ाफिरों से प्रेम नहीं करता।" (3 : 32)

(ऐ) जो कोई अल्लाह और उसके रसूल की आज्ञा का पालन करेगा वह उसे बागों (जन्नत) में प्रविष्ट करेगा। (4 : 13)

(ओ) जैसे ही पैगम्बर की शक्ति बढ़ती जाती है वह अल्लाह के साथ सह-शासक हो जाता है क्योंकि वे जो कुछ करते हैं, मिल कर करते हैं, और लोगों के पास कोई विकल्प नहीं रहता कि वे आज्ञा पालन में विरत रहें।

(औ) जब अल्लाह और उसके 'रसूल' ने किसी बात का फैसला कर दिया तो किसी भी विश्वासी पुरुष या स्त्री के पास विकल्प नहीं कि वह अवज्ञा करे। जिस किसी ने अल्लाह और उसके 'रसूल' की अवज्ञा हो वह गुमराही में जा गिरा। (33 : 36)

धीरे-धीरे पैगम्बर, जो प्रारम्भ में मात्र मरण-धर्मा मानव था और अल्लाह की आज्ञा का पालक था, आगे बढ़कर, ईश्वरत्व में, वह अल्लाह का सहभागी बन गया और अन्त में उन्नति करके स्वयं अल्लाह बन जाता है और अल्लाह उसका (मुहम्मद का) भक्त बन जाता है। यह ईश्वर निन्दा प्रतीत होती है, किन्तु यह एक कुरान सम्मत सत्य है। कुरान के शब्द इस प्रकार हैं—

'निश्चय ही अल्लाह और इसके 'फिरश्ते' 'नबी' पर 'रहमत' भेजते हैं। हे लोगो जो 'ईमान' लाए हो! तुम भी उन पर 'रहमत' भेजो और खूब सलाम भेजो।' (33 : 56)

शान्ति की कामना करना पूजा करने की सर्वोच्च विधि है। यह हिन्दू धर्म के दूसरी या तीसरी सदी ए. डी. के भक्ति आन्दोलन के समान है। भक्ति भावना की प्रेरणा गीता की है, यद्यपि रामायण और पुराणों का भी भक्ति भावना में पर्य्याप्त योगदान है। भक्ति भावना का अर्थ, भक्त का अपने भगवान के प्रति

Scanned by CamScanner

गहनतम, भावनात्मक प्रेम होता है। यद्यपि एक हिन्दू, अपनी भक्ति के केन्द्र बिन्दु के लिये, किसी भी देवता को चुन सकता है। यह भक्ति भावना विशेषकर विष्णु के अवतार—राम और कृष्ण के प्रति ही विकसित हुई है। हिन्दू पूजा विधि में, भगवान के नाम का संकीर्तन करना, उसकी प्रशंसा में गीत गाना, उससे सम्बंधित स्थानों की यात्रा करना, पूजा स्थल या व्यक्तिगत सभाओं या मन्दिरों में उसकी स्तुति करना, दान देने आदि के कार्य शामिल हैं।

मुसलमान, विशेषकर भारतीय उप महाद्वीप वालों ने, मुहम्मद के प्रति वही दृष्टि कोण अपनाया हुआ है। उन्होंने बहुत ही उच्च कोटि का भावनात्मक उपासना ढंग जिसे **'इश्के रसूल'** अर्थात् 'मुहम्मद के प्रति गहनतम प्रेम' कहा जाता है, अपनाया हुआ है। यह अनुराग भक्ति इतनी गहरी है कि एक पुजारी, राजनीतिज्ञ, या प्रेरक, मुसलमानों को अति सरलता से, मुहम्मद के नाम पर भ्रमित कर उनसे कुछ भी करवा सकता है, भले ही वह काम कितना ही विवेकहीन क्यों न हो!

मुहम्मद के नामोच्चर के लिये मुसलमान घण्टों तक सभायें करते हैं, उसकी प्रशंसा में लगातार गीत गाते हैं, पवित्र तीर्थ स्थलों को जाते हैं, और उसके नाम का संकीर्तन दैनिक पूजाओं में भी करते हैं।

यह घोर आश्चर्य की ही बात है कि जब हिन्दू मूर्तियों के माध्यम से, जो कि परम सत्य की प्रतिनिधि मात्र ही होती हैं, अपने देवताओं की पूजा करते हैं, तो उन्हें मूर्ति पूजक कहकर हेय घोषित किया जाता है, किन्तु जब मुसलमान उसी प्रकार से पूजा-संकीर्तन करते हैं, तो वे एकेश्वरवादी हो जाते हैं। वास्तव में वे इस पहेली के रहस्य को और भी आगे ले जाते हैं। हिन्दू धर्म में मनुष्य अनिवार्य रूप में ईश्वर की पूजा करता है किन्तु इस्लाम में तो अल्लाह और फिरिश्ते, दोनों ही मुहम्मद के लिये शान्ति की कामना के साथ, मुहम्मद की पूजा करते हैं। यह कितना आश्चर्यजनक है!

मुहम्मदवाद और मूर्ति पूजा

इस्लाम पक्के तौर पर मुहम्मद की पूजा का ही पंथ है। परन्तु इसे मुहम्मदवाद कहने के बजाय **'ईश्वर पूजा का सच्चा पंथ'** कहा जाता है। मुहम्मद ने अपने अनुयायियों की इतना बड़ी संख्या, जो पूजा तो मुहम्मद की करती है, किन्तु दावा अल्लाह की पूजा का करती है, का निर्माण किस प्रकार किया?

Scanned by CamScanner

निम्नांकित तथ्यों को समझ कर कोई भी इस पहेली का उत्तर निकाल सकता है :—

1. उसने काबा में (स्थापित) अल्लाह की मूर्ति का विध्वंस कर दिया। अज्ञान और परम्परा के कारण अरब वासी इस मूर्ति को परम पवित्र समझते थे क्योंकि उनकी मान्यतानुसार यह मूर्ति वास्तविक ईश्वर की थी। जब तक अल्लाह की मूर्ति रही आएगी, कोई भी अल्लाह का स्थान नहीं ले सकता था क्योंकि उसकी मूर्ति ही उसका दैवी चिह्न था। स्वयं अपने आपको अल्लाह का दैवी चिह्न बताने के लिये किसी के भी द्वारा इसका विध्वन्स करना आवश्यक था। मुहम्मद ने संसार में अपने आपको अल्लाह का एक मात्र प्रतिनिधि प्रक्षेपित कर इस मूर्ति को तोड़ दिया, और वह अन्य मूर्तियों की भाँति, वास्तविक अल्लाह के रूप में माना व पूजा जाने लगा। उसने अल्लाह को इसलिये चुना क्योंकि अल्लाह उसके कबीले का प्रतिनिधित्व करता था, सर्वाधिक पवित्र और शक्तिशाली माना जाता था।

2. अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये, पैगम्बर ने दावा किया कि उसे इस संसार में मानव मात्र के लिये दया और प्रेम के रूप में ही भेजा गया है।

"हमने तुम्हें मानव मात्र के लिये केवल दयालुता के रूप में ही भेजा है" (21 : 107) और अपने आपको मानव प्रेम का पैगम्बर प्रक्षेपित किया। अनेक हदीसें हैं जो मुहम्मद का प्रेम पाने के लिये उग्रता के साथ समर्थन करती हैं। उदाहरण के लिए "**किसी भी व्यक्ति का ईमान तब तक पूरा नहीं है जब तक उसकी दृष्टि में (मुहम्मद) उसके परिवार वालों से, उसकी सम्पत्ति से और उसकी सम्पूर्ण मानवता से अधिक प्रिय नहीं हो जाता है।**" (सहीह मुस्लिम हदीस, 17 खण्ड 1)

3. पूरी तरह आज्ञा पालन के लिये, उसने दावा किया कि मानव व्यवहार के लिये वह एक दैवी आदर्श है और जिसका उसके सभी अनुयायियों द्वारा ठीक उसी प्रकार अनुकरण किया जाना चाहिये : "तुम्हारे (ईमान वालों) लिये जो अल्लाह और 'आख़िरत के दिन' की आशा रखता है, अल्लाह के 'रसूल' में एक आदर्श उदाहरण है।" (33 : 21)

यह बात बहुत ही साफ़ शब्दों में कही गई है कि जो कोई भी 'जन्नत' जाना चाहता है, अल्लाह और 'आख़िरत' की अनुकूलता की आशा रखता है,

Scanned by CamScanner

उसे पैगम्बर के व्यवहार के आदर्श का अनिवार्य रूप में अनुसरण करना चाहिये। इसी को 'सुन्नाह' कहते हैं। सभी मुसलमान मुहम्मद के ही ढंग से जीना चाहते हैं यहाँ तक कि छोटी से छोटी क्रियाओं, जैसे खाना, पीना, बातचीत करना, सोना, पोशाक पहनना, आदि में भी नकल करना आवश्यक है। वस्तुतः मुहम्मद ने अपने अनुयायियों की सारी मानसिकता को पूरी तरह से नियन्त्रित कर दिया है।

4. मुहम्मद का अपने देवत्व के सन्दर्भ में **'मध्यस्थता का अधिकार'** उसका अचूक हथियार है। पाठकों के लाभ के लिये मैं कुरान की धारणा को स्पष्ट कर देना चाहूँगा। वह बार-बार कहती है कि **'क़ियामत के दिन'** यह केवल अल्लाह ही है जो तय करेगा कि कौन 'जन्नत' में जायेगा और कौन 'दोज़ख' में। यहाँ भी अन्य अनेकों मामलों की भाँति, मुहम्मद के हित और सुविधा के लिये, कुरान अपने मत में पलटी लगा जाता है, और आखिर में घोषित करता है कि :

"उस दिन कोई मध्यस्थता का अधिकारी नहीं होगा, सिवाय उसके जिसे परम कृपालु (प्रभु) अल्लाह ने अधिकार दे दिया है, जिसके अधिकार को वह स्वीकार कर ले।" **(20 : 109)**

यही बात सहीह मुस्लिम (5655, खण्ड 4) में पूरी तरह स्पष्ट की गई है:—

"मैं (मुहम्मद) ही पहला मध्यस्थता करने वाला, और पहला व्यक्ति हूँगा जिसकी मध्यस्थता को अल्लाह द्वारा स्वीकृत किया जायेगा।"

इसका अर्थ होता है कि पैगम्बर को अधिकार है कि वह अल्लाह को विवश कर सके कि वह जो मुहम्मद चाहे सो करे। वह (मुहम्मद) अपने अनुयायियों का भले ही वे कातिल, बलात् शील हरण-कर्ता, चोर, झूँठे, और अपराधी क्यों न हों, को **'जन्नत'** भेज सकेगा और गैर-मुस्लिमों (गैर-ईमानवालों) को वह दोजख में ही भेजेगा, भले ही वे अत्यन्त सदाचारी रहे हों। कुरान कहता है:—

"निश्चय ही ये शब्द एक उदार पैगम्बर के हैं जिसके अल्लाह के सिंहासन पर अधिकार सुरक्षित हैं, जिसकी आज्ञा का पालन होता है, और जो विश्वसनीय है।" (81 : 19-21)

Scanned by CamScanner

मुस्लिम विद्वान इस आयत की व्याख्या करते हैं कि 'क़ियामत' के दिन पैगम्बर अल्लाह के 'न्याय के सिंहासन' पर उसके सीधे हाथ को बैठेगा। उसके सुझाव अल्लाह को मान्य होंगे। 'आज्ञापालन और विश्वसनीय' शब्दों का इस प्रकार का अर्थ मुस्लिम विचारक निष्ठापूर्वक विश्वास करते हैं।

इससे अब कोई भी समझ सकता है कि अल्लाह तो कहने भर के लिये है क्योंकि मुहम्मद ने मानव मात्र के भाग्य को अपने हाथों में समेट लिया है। अल्लाह तो मुहम्मद का एक कारिंदा मात्र है क्योंकि वह (अल्लाह) वही करता है जो मुहम्मद उससे कराता है। उदाहरण के लिए 'क़िबला' को बदलने का मामला अल्लाह ने मुहम्मद को प्रसन्न करने के उद्देश्य से तय किया। इस्लामी कानून की व्यवस्था है कि यदि किसी मुसलमान के एक से अधिक पत्नियाँ हैं तो वह उन सभी के साथ पूरी समानता के साथ व्यवहार करे। किन्तु अल्लाह ने मुहम्मद को उसमें छूट दे दी कि वह अपनी किसी भी पत्नी को जिसे वह ठीक समझे मुक्त कर दे। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि इस्लामी कानून में कोई भी मुसलमान एक समय में चार से अधिक पत्नियां नहीं रख सकता। किन्तु मुहम्मद की एक ही साथ कम से कम नौ पत्नियां तो थीं ही। साफ़ है कि वह अल्लाह के कानूनों से ऊपर ही था। सारा संसार यह मानता है कि कानून की पाबन्दी की दृष्टि में सभी समान होते हैं, भले को वह कानून निर्माता स्वयँ ही क्यों न हो। जब तक कि मुहम्मद अपने आपको अल्लाह से ऊपर वरीयता प्राप्त न मानता हो तब तक वह अल्लाह के कानूनों की अवज्ञा नहीं कर सकता था। इससे पैगम्बर की प्रभुत्व की चाह की गहराई का आभास हो जाता है।

अब यह सुस्पष्ट है कि मुहम्मद मूर्ति पूजा का विरोधी नहीं था वरन् वह दूसरी मूर्तियों से घृणा करता था क्योंकि वह स्वयँ को उनका स्थानापन्न बनाना चाहता था। संक्षेप में वह अन्य सभी मूर्तियों को हटाकर अकेले अपनी की ही पूजा कराना चाहता था। इसके अलावा मुहम्मद जान गया था कि और लोग भी हैं जिनका अहङ्कार अति विशाल है और चाहते हैं कि उन्हें भी आध्यात्मिक महापुरुषों के रुप में पूजा जाये और याद किया जाये। इसलिये उसने अपनी ही दैवी छाया के नीचे एक सर्व समावेशी देव मन्दिर के निर्माण की आज्ञा दे दी। इसका अर्थ यह हुआ कि जो कोई इन छोटे देवताओं में

Scanned by CamScanner

विश्वास रखेगा, स्वाभाविक रूप में उसका ही अनुसरण करेगा। सहीह मुस्लिम किताब फदा अल सहाब से इन छोटे देवताओं के बारे में ज्ञान हो जाता है। वे पैगम्बर मुहम्मद के परिवार के सदस्य हैं जिनके नाम हैं—अली (फातिमा, हसन, और हुसैन सहित) साथ ही अबू बकर, उमर, उसमान, और अनेकों अन्य जो उसकी सेवा में भली प्रकार रत रहे, जिनसे उसका उद्देश्य सफल हो सका।

मेरा विचार है कि मैं मूर्ति पूजा के विषय में, इस्लामी दृष्टिकोण के बारे में बहुत कुछ कह चुका हूँ। इस्लाम वास्तव में मूर्ति भञ्जक नहीं है यानी कि मूर्ति पूजा विरोधी नहीं है वरन् मूर्ति पूजक ही है जब तक कि वह केवल पैगम्बर मुहम्मद, उसके निकट सम्बन्धियों और साथियों तक सीमित हैं जिनकी उसकी आध्यात्मिक नेतागीरी में पूजा होती रहती है।

मुसलमान और मूर्ति पूजा

जैसाकि इतिहास के विद्यार्थी जानते हैं कि मुसलमानों ने, जहाँ कहीं वे अपना जाल फैला सके प्रत्येक देश के इस्लाम-पूर्व के इतिहास को पूरी तरह से नष्ट करने के लिये सभी कुछ किया। इस्लाम का पालना-अरब देश भी इस नियम में अपवाद नहीं रहा है। इसके इस्लाम-पूर्व के इतिहास को खोज पाना सरल नहीं है तो भी हदीसों और ऐन्साईक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के विद्वत्तापूर्ण लेखों से कुछ तथ्य खोजे जा सकते हैं। जानकारी के इन स्रोतों का अध्ययन कर लेने के बाद **मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि पैगम्बर मुहम्मद का भारत के प्रति घृणा का दृष्टिकोण बन गया था।** ऐसा इसलिये था कि वह (मुहम्मद) बहुत ही विशुद्ध, महान राष्ट्रवादी नेता था। उसकी देशभक्ति के उन्माद ने, उसे मिश्र, ईरान, बाइजैण्टाईन (ग्रीक) और भारत की महानता को नष्ट कर देने के लिये विवश किया था। इन सब देशों में से भारत उसके लिये कठिन समस्या बन गया। ऐसा क्यों हुआ?

मुहम्मद और भारत

क्योंकि मुहम्मद, जो अपने अरब लोगों के प्रेम के कारण बुरी तरह उत्साहित था, उनका एक महान् राष्ट्र बनाना चाहता था, तथा मुहम्मद के सपनों के लिये भारत एक वास्तविक अति कठिन रोड़ा सिद्ध हुआ था। वह यह भी

Scanned by CamScanner

जानता था कि उससे पहले मूसा ने यहूदियों का एक महान राष्ट्र बना दिया था जिसने उसके नाम को अमर कर दिया। इसलिये मुहम्मद के राष्ट्रीय सपनों ने उसे अपने आपको देवता की स्थिति में ला देने की माँग पैदा की जिसके लिये अरब को एक महान राष्ट्र बनाने और अपने लिये महिमा अर्जित करने के लिए एक बड़ा संघर्ष आवश्यक था, और यही अरब राष्ट्रवाद की धुरी भी बनती थी।

मुहम्मद की पैगम्बरीय योजनाओं में भारत एक महान रोड़ा था। इसका कारण यह था कि अरब की जीवन व्यवस्था और पांथिक विचार, दोनों ही भारतीय सँस्कृति और धर्म से बुरी तरह प्रभावित थे। अपनी बात को और अधिक स्पष्ट करने के लिये मैं कहना चाहूँगा कि जिस प्रकार आज भारतीय उपमहाद्वीप इस्लाम के जीवन पद्धति से प्रभावित है, उसी प्रकार पैगम्बर मुहम्मद के काल में अरब प्रायद्वीप हिन्दू जीवन व्यवस्था से प्रभावित था। अतः जब तक वह (मुहम्मद) हिन्दुत्व की जड़ों पर सफलता पूर्वक आघात न करे, तब तक वह अपने आपको पूजनीय नहीं बना सकता था। **सँक्षेप में, अपने को पूजनीय स्थापित करने के लिये उसे हिन्दू मूर्तियों का नष्ट करना अनिवार्य था।**

क्या इस दृष्टिकोण के समर्थन में कोई प्रमाण मिलते हैं? निस्सन्देह मिलते हैं। निम्नलिखित हदीस से ही प्रारम्भ करें। अब्दुल्ला बिन अम्र बिन अल-आस ने वर्णन किया है कि, "अल्लाह के दूत (उसकी आत्मा को शान्ति पहुँचे) ने मुझे दो भगवे-रंग के कपड़े पहने देखा। जिस पर उन्होंने कहा 'ये वे कपड़े है, जिन्हें सामान्यतया अविश्वासी (हिन्दू) पहनते हैं, इसलिये इन्हें मत पहनो।" **(सहीह मुस्लिम 5173 खंड 3)**

इस घटना को अगली हदीस नं. 5175, एक उग्र रूप में वर्णन करती है: "अब्दुल्ला बिन अम्र बिन अल आस को भगवे रंङ्ग में रङ्गे दो कपड़ों को पहने देखकर पैगम्बर ने कहा, "क्या तुम्हारी माँ ने तुम्हें इन्हें पहनने को कहा है? अब्दुल्ला ने उत्तर दिया कि, "**मैं इन्हें धो डालूंगा।**" पैगम्बर ने उत्तर दिया, "**इन्हें जला दो।**"

पुनः हदीस संख्या 5177 कहती है कि "पैगम्बर ने निषेध किया कि स्वर्ण आभूषण और भगवा रंग के वस्त्र पहनकर कुरान नहीं पढ़ना चाहिये।"

Scanned by CamScanner

सामान्यत: भारत के प्रति और विशेषकर हिन्दुत्व के प्रति छिपी हुई घृणा के सन्दर्भ में, हमें समझ लेना चाहिये कि ओउम् या हिन्दू ध्वज का रङ्ग भगवा होता है जिसे भगवा, केसरिया और गेरुआ भी कहते हैं। ओउम् का ध्वज उगते हुए सूर्य का प्रतिनिधित्व करता है, जो न केवल भगवा रङ्ग की ओर इशारा करता है वरन् उस समय अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ऊर्ध्वगामी भारतीय शक्ति एवम् सामर्थ्य की ओर भी इशारा करता है। वास्तव में, केसरिया यहाँ का राष्ट्रीय रङ्ग था क्योंकि हिन्दू वीर पुरुष, सन्यासी, और सन्त, केसरिया रङ्ग के कपड़े पहना करते थे। इसके अतिरिक्त यह रङ्ग हिन्दू ग्रंन्थों में वर्णित वीरता की हिन्दू परम्परा, महानता, और उदारकर्मों के प्रति निष्ठा का भी प्रतीक था। अथर्ववेद (10.10.2) भगवा रङ्ग के ध्वज का स्पष्ट उल्लेख करता है। इसलिये भगवा रङ्ग केवल हिन्दू परम्परा का ही अङ्ग नहीं है वरन् हिन्दू धार्मिक साधुता, पवित्रता और ईमानदारी का भी द्योतक है।

उपर्लिखित हदीसों से यह स्पष्ट है कि अरब देवता ही नहीं वरन् सामान्य अरब वासी भी भारतीय प्रभाव में पीले या केसरिया रंग के वस्त्र पहना करते थे जिनसे पैगम्बर को इतनी घृणा थी कि वह केसरिया पोशाकों को जला देने का समर्थन किया करता था, और कुरान पढ़ते समय इन वस्त्रों के पहनने को मना करता था।

यह बात ध्यान में रखने की है कि पैगम्बर मुहम्मद एक विशिष्ट अरब राष्ट्र बनाना चाहता था जो उसकी महानता को बढ़ाने के लिये समर्पित था। यही कारण है कि वह अपने अनुयायियों को आग्रह किया करता था कि वे अपने सिर और दाढ़ी के बाल हिना, (लाल रंग) के रंगें ताकि वे यहूदियों से भिन्न दिखें और हिन्दू परम्पराओं से अलग करने के लिये उसने (मुहम्मद ने) अपने अनुयायियों को हरे रङ्ग का प्रयोग करने का आग्रह किया।

कुरान ने अपने लगभग सभी प्रमुख उपदेश बहुत अस्पष्ट रीति से वर्णन किये हैं। उदाहरण के लिए अल्लाह और पैगम्बर के बीच सम्बन्ध, स्वतन्त्र इच्छा और पूर्व नियति आदि। इस सन्दर्भ में कोई भी गीता का कुरान पर प्रभाव देख सकता है जिसका कथन है:—

"ईश्वर सृष्टि का निर्माण प्रारम्भ करता है, और फिर निर्मित करता है और उसी को और तुम्हें पलटना है" (दी ग्रीक्स 10)।

Scanned by CamScanner

इस्लाम का एक कबीला—लैबनान का ड्रूज़ैज—आज भी संसार सम्बंधी इस अवधारणा का निष्ठा पूर्वक पालन करता है। यह इस्लाम-पूर्व परम्परा की ही निरन्तरता है जो अरब संस्कृति पर भारतीय (हिन्दू) प्रभाव के अवशेष मात्र हैं। मुहम्मद ने अपने पूर्वजों के, इस्लाम-पूर्व के, इतिहास को पूरी तरह नष्ट कर दिया जिसके कारण अरब का साँस्कृतिक मूल्यांकन निश्चय ही अति जटिल हो गया है। तो भी आधुनिक विद्वानों ने इस देश के विषय में कुछ धार्मिक तथ्य एकत्र कर लिये हैं जो पुष्ट करते हैं कि **अरब और अन्य देशों से हिन्दूधर्म को विनष्ट किये बिना मुहम्मदवाद की स्थापना करना सर्वथा असम्भव था।**

सत्य तो यही है कि अरबवासी केवल मूर्ति पूजक ही नहीं थे, बल्कि उनकी वास्तुकला (मूर्ति निर्माण कला) का आधार हिन्दुओं के त्रिदेव या त्रिमूर्ति का सिद्धान्त था। चूंकि मुहम्मद लोगों के मनों में, अपना स्वरूप स्थापित करना चाहता था, और यह तब तक सम्भव नहीं था जब तक कि हिन्दू मूर्तियों का विध्वंस न कर दिया जाये, जिनका उनके दृश्य रुप और पारम्परिक कथाओं के कारण व्यापक प्रभाव था जो सदियों के काल में निर्मित हुआ था। निश्चय ही मैं इतिहास के साथ जाल साज़ी नहीं कर रहा हूँ। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये हदीसें स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करती हैं।

"जाबिर बिन समूरा ने अल्लाह के पैगम्बर के यह कहते हुए वृत्त दिया था (अल्लाह उन्हें शान्ति दे) "**मैं मक्का के पत्थर को पहचानता हूँ जो मेरे पैगम्बर बनने से पूर्व मुझे सलाम किया करता था और मैं उसे अभी भी पहचानता हूँ।**" (सहीह मुस्लिम 5654 खंड 4) इस हदीस से तीन बातों की पुष्टि हो जाती है:—

1. यद्यपि मुसलमान आग्रह सहित कहते हैं कि मुहम्मद, आदम के जन्म से पहले से ही पैगम्बर था, लेकिन यह वर्णन प्रदर्शित करता है कि ऐसा नहीं था और यह तथ्य उप वाक्य "**मेरे पैगम्बर होने से पूर्व**" द्वारा पूरी तरह ज्ञात हो जाता है। पुनः ऐतिहासिक दृष्टि से ज्ञात है कि उसे (मुहम्मद को) पहला इल्हाम (ईश्वरीय सन्देश) तब प्रगट हुआ, जब वह चालीस वर्ष का था। मुहम्मद के जीवन के इस बिन्दु से ही उसने इस्लाम के उपदेश देना प्रारम्भ किया। स्पष्ट है, कि इससे पूर्व यह उसका पंथ नहीं हो सकता। यदि यह सच

Scanned by CamScanner

हुआ होता, तो वह अपने शिशुपन एवं जन्म से ही इस्लाम के उपदेश देना प्रारम्भ कर देता। तो उससे पूर्व उसका पंथ क्या था? यह हदीस इस प्रश्न का भी उत्तर दे देती है।

2. **"मक्का का पत्थर"** अन्य कुछ नहीं हो सकता सिवाय मक्का के प्रमुख मन्दिर **'काबा के काले पत्थर'** (हज्र-ए-अस्वद) के, जिसमें और मूर्तियाँ भी स्थापित थीं। ये शब्द, **"मुझे सलाम किया करता था"** स्पष्ट करते हैं कि इस्लाम के संस्थापक बनने से पहले पैगम्बर मुहम्मद काफ़ी नियमित रूप से काबा के मन्दिर के दर्शनों के लिए जाया करता था। मुझे यह स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है कि लोग मन्दिर क्यों जाते हैं। जैसाकि मैं अभी कुछ समय बाद चर्चा करूंगा कि 'काला पत्थर' बिना शक्ल की मूर्ति है जो अभी भी काबा में शोभायमान है और जो इस्लामी रीति रिवाज़ों का प्रमुख भाग है। मुहम्मद दावा करता है कि यह मूर्ति उसको सलाम किया करती थी। चूंकि सलाम करना एक प्रकार की पूजा ही है, मुहम्मद को काबा पर मूर्ति पूजा द्वारा अपनी स्वयं की मूर्ति के समान पूजा कराने की प्रेरणा मिली! इसलिये, उसे दूसरी मूर्तियों के स्थान पर अपने आपको स्थापित कर देने की आवश्यकता अनुभव हुई ताकि मुहम्मदवाद स्थायी हो जाये। उसने हिन्दुत्व को ही पकड़ा क्योंकि वही अरबी मूर्ति पूजा का आधार था।

तीन मुख वाले अग्नि देवता का वर्णन तीन शिर वाले शिव देवता का आधार है जो कि सिन्धु घाटी में पाई गई कुछ मुहरों पर इसी प्रकार अङ्कित है। यह ध्यान रखने की बात है कि शिव एक वैदिक देवता है जिसका नाम रुद्र है। रुद्र देवता का नाम ऋग्वेद में इतनी बार वर्णन किया गया है कि उसे एक नगण्य देवता नहीं कहा जा सकता है। यद्यपि ऋग्वेद में मूर्ति पूजा का कोई उल्लेख नहीं है, फिर भी शैव परम्परा वैदिक सिद्धान्त के अपभ्रंश रूप का प्रतिनिधित्व करती हैं, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार अहिंसा आधुनिक हिन्दुइज़्म का आधार भूत अङ्ग बन गई है हालांकि वेद और गीता, एक पवित्र उद्देश्य के लिये युद्ध को निर्धारित करते हैं और एक सच्चे हिन्दू के लिये युद्ध को सर्वश्रेष्ठ आदर सूचक भी बताते हैं। दास और दस्यु अपमान सूचक नाम का आविष्कार इन विमत रखने वालों के लिये किया गया था जो अन्यों की भाँति पूरी तरह आर्य ही थे। यह प्रदर्शित करता है कि ऋग्वेद सिन्धु घाटी

Scanned by CamScanner

सभ्यता की अपेक्षा अधिक पुराना है और यह तथ्य रावलपिण्डी (पाकिस्तान) के निकट की गई अभी हाल ही की पुरातात्विक खुदाइयों के द्वारा प्रमाणित भी हो गया है। इससे भारतीय सभ्यता की प्राचीनता प्रमाणित हो जाती है। तीन मुख वाले शिव के साथ सँयुक्त मूर्ति पूजा का सिद्धान्त अरबी पंथ और सँस्कृति का त्रिक इसी प्रकार का आधारभूत सिद्धान्त बन गया, जैसा कि भारत में ब्रह्मा, विष्णु और शिव का त्रिक सिद्धान्त है। इस तथ्य की सच्चाई को समझने के लिये केवल अरब इतिहास का अवलोकन करना आवश्यक है।

प्राचीनता के अनेक ऊँचे दावों के होते हुए भी "अरब" शब्द ईसा पूर्व प्रथम *सहस्राब्द* के मध्य तक के ऐतिहासिक स्रोतों में नहीं मिलता हैं। बहुत सी सदियों पहले अरब प्रायद्वीप ने सिन्धुघाटी सभ्यता से साँस्कृतिक प्रेरणा ली थी किन्तु उसका आध्यात्मिक प्रभाव नाटकीय रीति से उस समय बढ़ा जब भारत की ओर, ग्रीक-रोमन व्यापार मार्ग में, ईसा से पूर्व पहली सदी में, परिवर्तन हुए। दक्षिणी अरब यानी कि यमन ने भारत के पंथ (हिन्दुत्व) का प्रभाव बहुत पहले से ही अनुभव कर रखा था। इसके बाद भारत का साँस्कृतिक प्रभाव उत्तर की ओर, मुहम्मद की भूमि हिजाज की ओर अग्रसर हुआ।

दक्षिणी अरब की राजधानी में त्रिक या त्रिमूर्ति का सिद्धान्त बहुत व्यापक रूप से व्यवहार में था। उदाहरण के लिए उनके त्रिक सिद्धान्त के अन्तर्गत तीन नक्षत्रीय देवताओं के प्रतिनिधि के रूप में चन्द्र देवता, सूर्य देवता और शुक्र देवता थे। इन तीनों देवताओं में चन्द्र देवता प्रमुख था जो प्रमुख नगरों की सुरक्षा किया करता था। फिर भी ,यह बता देना आवश्यक है कि मक्का का 'अल्लाह' देवता 'ऐल', दक्षिणी अरब में सुविख्यात नहीं था। पालम्रिया में भी देवताओं की त्रिमूर्ति उपलब्ध थी। इसमें 'बेल', 'यर्ही बोल', एक सूर्य देवता और 'अग्ली-बोल', एक चन्द्र जैसा देवता सम्मिलित थे। बैलशामिनी (स्वर्गों का स्वामी) देवता भी मलाक बेल और अग्लि बौल के साथ त्रिकोत्सक स्थिति में विद्यमान था।

त्रिकात्मक का सिद्धान्त दक्षिण से मक्का की ओर अग्रसर हुआ। कुरान (53 : 19, 20) स्वयं अल्लाह की तीन बेटियों का वर्णन करता है जिनके नाम हैं—अल-लाट, अल-उज्जा, और मनात। यह बताने योग्य है कि पालम्रिया में अल-लाट को ग्रीक देवी, अथीना के समान माना गया; अल-उज्जा को देवी

Scanned by CamScanner

नवातियों की देवी के सम स्तरीय और मनात (भाग्य) को पालम्रिया में ग्रीक की नैमैसिस के साथ सँयुक्त किया गया।

यह कहना कि इस्लाम, मूर्ति पूजा से मुक्त है, पूरी तरह भ्रामक ही है। इस्लाम के केन्द्रीय पूजास्थल काबा में एक मूर्ति है जो कि किसी हाजी की चरम सीमा का चिह्न होती है क्योंकि ईमानवालों को व्यक्तिगत रूप में उसे चूमना अनिवार्य है। यह वही काला पत्थर है जिसे '**हिजरे-अस्वद**' कहा जाता है, और इब्न-अल-काल्बी के मतानुसार, यह अल- तैफ में अल-लाट पंथ के केन्द्रीय महत्त्व के '**वर्गाकारीय पत्थर**' का ही विस्तार मात्र है। सी. ए. डी. 1000 के ऐन्साइक्लोपीडिया के संकलनकर्त्ता ग्रीक निवासी सूदास का कहना है कि पेत्रा में, दुशारा, सोने के फ्रेम में '**काला पत्थर**' जैसा है।

मुसलमान कहते हैं कि जब अल्लाह ने आदम को स्वर्ग से निकाला था, तब उसने आदम को यह '**काला पत्थर**' दिया था जो कि अब 'काबा' की पूर्वी दीवाल में स्थित है और जिसमें तीन बड़े टुकड़े और कुछ अंश सम्मिलित हैं जिनके चारों ओर पत्थरों का घेरा है जिसे एक चाँदी के फीते से साधा हुआ है। 930 ई. में, इसे करमेशियन कबीले के सदस्य उड़ा ले गये थे। तथापि ऊपर लिखा साक्ष्य प्रमाणित करता है कि अरब के अन्य मन्दिरों में भी '**काले पत्थर**' थे। अल्लाह ने आदम को इतने सारे पत्थर तो ले जाने के लिये नहीं दिये होंगे! फिर अरबी सँस्कृति में '**काले पत्थर**' की वास्तविकता में क्या थी?

"अरब पंथ में पत्थर, भले ही वह चट्टान से कटाई कर बना हो या एक बड़ा गोला हो, अक्सर बिना किसी का प्रतिनिधित्व करने वाली पच्चीकारी के स्वरूप का, एक आयताकार काला बैसाल्टिक पत्थर हो वह अरब धर्म की प्रमुख पवित्र वस्तु थी।" इस प्रकार के पत्थरों को, पूर्ववर्ती किसी देवता के घरों यानी कि मन्दिरों में, पूजा के लिये उपयुक्त सामग्री समझा जाता था। यही कारण है कि पाँचवी और छठी सदी के, बाइजैण्टाइन के ईसाई लेखक, ऐसे पत्थरों को 'बैटिल' कहते थे, इस शब्द की उत्पत्ति 'बैट-ए' (ईश्वर के घर) से हुई है।

आकृति हो या न हो, एक पत्थर जो कि पूजा की विषय वस्तु है, मूर्ति ही है। मूसा ने हर प्रकार की मूर्तियों का निषेध किया, किन्तु मुहम्मद ने काबा की पूजा को चालू रखा, और राष्ट्रीय कारणों से, उसे इस्लाम के लिये पूजा

Scanned by CamScanner

का सर्वोत्तम पूजा स्थल बना दिया। उद्देश्य यह था कि यदि अरब राष्ट्र अपनी राजनैतिक महानता खो भी देता है तो भी मुस्लिम राष्ट्र उसके प्रति नमन करते रहेंगें। ईश्वर संसार में सर्वत्र व्याप्त रहता है, किन्तु मुहम्मद की बुद्धिमत्ता थी कि उसने, ऐसा लगता है, कि उसे (अल्लाह को) अपने अरब वासियों के हित के लिये, सदैव के लिये मक्का में स्थिर कर दिया।

यह बात समझ लेनी चाहिये कि वार्षिक तीर्थ यात्रा (हज) इस्लाम से पूर्व अरब का एक प्रमुख उत्सव हुआ करता था। सभी कबीले जिनका एक ही देवता हुआ करता था, एक ही पूजाग्रह पर एकत्र होने के लिये विवश किए जाया करते थे और उत्सवीय जुलूस के रूप में 'बैटिल' के चारों ओर घूमा करते थे। पैगम्बर ने भी इस 'इस्लाम-पूर्व' की परिपाटी को अपने देश, अरब के आर्थिक हितों के लिये, बनाये रखा। समझने की बात यह है कि एक सच्चे कहे जाने वाले ईश्वर के लिये, इस मूर्ति पूजन उत्सव का क्या प्रयोजन हो सकता है?

'ईमान'-वाले मुसलमान अक्सर भूल जाते हैं कि पैगम्बर अरब साम्राज्य का संथापक था, जो कि वास्तव में एक शक्तिशाली राष्ट्र के निर्माण के बिना सम्भव नहीं था जो उस समय की ईरान, व बाईजैण्टाइन जैसी (राजनीतिक) शक्तियों को नष्ट-भ्रष्ट और चकनाचूर कर सके। चूंकि दूसरे राष्ट्र अपने देवताओं से रोकर, रेंगकर और घिघिया कर शक्ति अर्जित किया करते थे, वहीं पैगम्बर अपने लोगों को चाहता था कि वे उससे प्रेरणा, शक्ति और विजय के लिये प्रार्थना करें। इसी कारण वश वह स्वयँ सम्मान, पूजा और आराधना किये जाने का विषय वस्तु बन जाने के लिए आतुर था। होशियारी के रूप में, उसने 'अल्लाह' को ईश्वर के रूप में प्रक्षेपित किया, और भारतीय सिद्धान्त "कि प्रत्येक भौतिक तत्व के पीछे एक दैवी शक्ति हुआ करती है", का अनुसरण करते हुए अल्लाह के पीछे एक प्रेरणाशक्ति के रूप में स्वयँ हो गया। तथापि वह अपनी महत्वांकांक्षा की पूर्ति, दूसरों की मूर्तियों का विध्वंस करके ही कर सकेगा। जब तक वे मूर्तियाँ विद्यमान थीं, उसे अपनी पूजा करा लेने के अवसर न्यूनतम ही थे। चूंकि **भारत, मूर्ति पूजा का मुख्य केन्द्र था, मुस्लिम आक्रान्ताओं ने बार-बार इस भूमि को अपनी महत्वाकांक्षा पूर्ति का शिकार बनाया।**

मानव एक रूपता पर नहीं, वरन विविध रूपता पर आधारित है। ऐसा इसलिये है कि मानव को स्वतन्त्र बुद्धि प्राप्त है। स्वतन्त्र चिन्तन के अभाव में

Scanned by CamScanner

मानव, मानव नहीं रहता। इसलिये अल्लाह यदि वह वास्तव में ईश्वर है तो वह, उन लोगों के वध के आदेश नहीं दे सकता, जो उसमें विश्वास नहीं रखते। भारत के सन्दर्भ में तो यह वध के आदेश और भी बेहूदा हैं क्योंकि हिन्दुओं ने तो जीव मात्रों के स्वामी प्रजापति की अवधारणा विकसित कर रखी है। हिन्दुओं का प्रजापति, मुसलमानों के अरब के अल्लाह से अधिक एकेश्वरवादी है क्योंकि अल्लाह का देवत्व, 'मुहम्मद, उसके परिवार, उसके उत्तराधिकारियों, और साथियों के साथ' भागीदारी में है। अतः, अरबियों के अल्लाह का एकेश्वरवाद मात्र शब्दों में ही है। इसलिये मुसलमानों का, भारत के साथ, विश्वव्यापी ईश्वर के कारण, कोई संघर्ष नहीं था। उनके संघर्ष का केन्द्र बिन्दु मुहम्मद ही था जिसने घोषित कर रखा है कि अल्लाह के साथ-साथ उसमें भी विश्वास करना अनिवार्य है। मुहम्मद में विश्वास के अभाव में, अल्लाह में विश्वास को कोई विश्वास नहीं कहा जा सकता। अकेले अल्लाह में विश्वास पूर्णतः निरर्थक ही है।

सच्चा ईश्वर तो गुणों का संरक्षक व समर्थक होता है यानी वह तो सर्वगुण सम्पन्न होना चाहिये। किन्तु वह अल्लाह जो कत्ल, नारियों के बलात्कार, अग्नि दाह, बलात दास बना लेने की आज्ञा, इस उद्देश्य से देता है कि लोग बलात उसमें विश्वास करने लगें, ईश्वर होने के लिये गुणी कहलाने के स्तर में पिछड़ जाता है। वह मात्र महा स्वार्थी ही नहीं है, वरन् शक्तिहीन भी है। यदि वह वास्तव में सर्वशक्तिमान और सृष्टि का रचयिता हुआ होता तो निश्चय ही उसने पूरी तरह से ईमान लाने वाला आज्ञाकारी मानव रचा होता। यह (अल्लाह) किस प्रकार का ईश्वर है जिसका स्वयं का सन्तोष लोगों द्वारा उसकी स्वीकृति पर निर्भर है? जब मानव अल्लाह को स्वीकार करता है, तो ईश्वरत्व की ऐसी अवधारणा, अल्लाह का खुला अपमान ही है। मुसलमानों को स्पष्ट समझ लेना चाहिये कि वे अल्लाह (ईश्वर) की आराधना नहीं करते हैं।

सार की बात यह है कि धर्म मानसिक शन्ति और नैतिक पूर्णता प्राप्त करने का साधन है। निरपराध बच्चों को अनाथ बना देने, और खुशी के साथ शादी की हुई औरतों को विधवा बना देने के आदेश, सच्चे अल्लाह के आदेश नहीं हो सकते। दूसरे लोगों की स्वाधीनता को समाप्त कर उन पर आधिपत्य जमा लेना पवित्रता का कोई भी अंश नहीं है, किन्तु वह पंथ जिसे मुहम्मद

Scanned by CamScanner

ने चलाया वह जानबूझकर अविश्वासियों (गैर-मुस्लिमों) पर आधिपत्य जमा लेने की ही इच्छा रखता है। कुरान बार-बार कहता है : **"अल्लाह वह ही है जिसने मार्ग-दर्शन के साथ और 'सच्चे पंथ' के साथ 'रसूल' को भेजा है जो अन्य सभी पंथों के ऊपर हावी होकर रहेगा। भले ही मुश़रिक उसे कितना ही नापसन्द करें।" (9 : 33)**

अविश्वासियों के विरुद्ध लगातार संघर्ष करने के लिये, मुहम्मद ने, सभी पंथों को झूठा घोषित कर, उन्हें निरस्त कर दिया। और फिर उनके विरुद्ध एक स्थायी युद्ध तब तक के लिये, घोषित कर दिया जब तक कि वे पूर्णतः समाप्त न हो जायें। **(सहीह मुस्लिम 31, 32, 33 खंड 1)**

सम्पूर्ण विध्वंस का उद्देश्य मात्र इतना ही है कि मुहम्मद के अनुयायियों की संख्या सर्वाधिक हो जाये। **(सहीह मुस्लिम 381 खंड 1)** मुसलमान मुहम्मद की हावी होने की चाह की पूर्ति और अनुयायियों की संख्या बढ़ाने के लिए, बहुदेवतावाद के केन्द्र भारत आए।

बहुदेवतावाद की जड़ों की गम्भीर खोज न केवल भारत की ही ओर अग्रसर करती है वरन् भारत (हिन्दुओं) की शान की ओर भी अग्रसर करती है। हिन्दुओं की महिमा की आभा निश्चय ही इतिहास के लम्बे घने काले बादलों के कारण लम्बे समय से धूमिल हो गई हैं। मैं एक पथभ्रष्ट देश भक्त बनने का प्रयास नहीं कर रहा हूँ जो इतिहास की अस्थिरता द्वारा भारत के राष्ट्रीय जीवन पर लगे भीषण रूप में दर्दनाक घावों को शान्त करने के लिये तथाकथित मिथ्या कहानियों को सत्य मान लेता है। मैं इस विषय का एक संयमी, सन्तुलितचित्त, गम्भीर विद्यार्थी हूँ जो सत्य को उसकी अप्रियता की तनिक भी चिन्ता न कर, उसे यथावत स्थापित करने में ही समाधान मानता है।

हिन्दुओं का अपनी परम्पराओं में गर्व न होने का प्रमुख कारण है, उनकी लिखने में अरुचि, विशेषकर ऐतिहासिक प्रलेखों को लिखने व सम्हाल कर रखने के प्रति अरुचि है। इस सब ने उनकी राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षाओं और आत्म सम्मान के स्तरों में भारी गिरावट में भयावह मात्रा में योगदान किया है। किन्तु सत्य को अनिश्चित काल तक दबाकर नहीं रखा जा सकता। यह सूर्य के प्रकाश की ही भाँति है जो ग्रहण के अन्धकार को चीरकर, उसकी बाधाओं

Scanned by CamScanner

को तोड़कर, बाहर निकल ही आता है। आज से पचास वर्ष पूर्व तक यही कहा जाता था कि हिन्दू इतने रुढ़िवादी होते हैं कि उन्होंने अपना घर देश छोड़कर कभी भी विदेश यात्रा नहीं की। आधुनिक तकनीकी ज्ञान की प्रगति को बधाई है कि यह बात प्रगट हो गई है कि हिन्दुओं का मलाया प्रायद्वीप, सुमात्रा, जावा, बाली, बोर्नियो, चम्पा (अन्नाम) कम्बोडिया, ब्रह्मा, स्याम और इण्डो-चाइना में राजनैतिक वर्चस्व स्थापित था। इन देशों पर भारत का राजनैतिक आधिपत्य एक हजार वर्ष तक रहा आया जबकि हिन्दुओं का साँस्कृतिक प्रभाव सभी दूरस्थ पूर्वी देशों पर अभी भी ज्वलन्त और जीवन्त है।

यह भी भारत की महिमा का एक अंश मात्र ही है। यह चित्र तब और अधिक स्पष्ट हो जाता है जब हम मूर्ति पूजा के सन्दर्भ में यूरोप की सभ्यता का अध्ययन करते हैं। तब कोई भी समझ सकता है, कि एक समय था जब यूरोपीय देश वैदिक सँस्कृति के अधीन थे जो भारत की एक विशिष्टता है और स्पष्ट रूप में प्रमाणित कर देता है कि आर्य भारतीय मूल के ही थे, न कि विरोधी बात जैसा कि हमें इतिहासकार विश्वास करने के लिये विवश करते रहे हैं। यदि यह कथन सत्य न होता तो यूरोप, अश्व-मेघ यज्ञ, यानी कि वेदों से निकटतम रूप में संयुक्त अश्व बलि यज्ञ न कर रहे होते। पाँच हजार वर्ष पुरानी एक हड़प्पा की मुहर पर उत्थित लिङ्ग की आकृति (पशुपति के रूप में शिव) एक कढ़ाव के भीतरी भाग में है, जो कोपैनहैगन, डैन्मार्क, के राष्ट्रीय संग्रहालय में रखी है जो कि दूसरी सदी की है। पश्चिमी देशों में शिव जो, एक वैदिक देवता है, हिन्दुओं के स्वयँ के वहाँ जाये बिना नहीं पहुँच सकता था। जैसाकि पहले ही विचार विमर्श किया जा चुका है कि ईश्वरत्व का प्रतिनिधित्व करने वाला त्रिसज्योजी सिद्धान्त त्रिक यूरोपवासियों ने बहुदेवतावाद की अवधारणा भारत से ही ग्रहण की थी। योरुप महाद्वीप में अब भी तीन सिर वाले देवताओं की तीस मूर्तियाँ प्रचलित हैं। वे भारत के शक्तिशाली शिव की ही हैं।

ग्रीकों की पौराणिक कथाओं की भारतीय पौराणिक कथाआं की तुलना करने पर हम अनुभव करते हैं कि **ग्रीस का प्रमुख देवता ज्यूस, भारत के प्रमुख देवता इन्द्र के सिवाय कुछ नहीं है।** इस प्रकार का साक्ष्य बहुत मात्रा में उपलब्ध है कि ग्रीस-रोम-बहुदेवतावाद का मूल भारत की मूर्ति पूजा के सिद्धान्त में दृढ़ता पूर्वक निहित है। ईसाई लेखक इसे मूर्ति-पूजावाद, पैगनिज़्म या हीथनिज्म कहते हैं।

Scanned by CamScanner

जैसे ही इस्लाम ने भारत में मूर्ति पूजा को चुनौती दी, ईसाईयत ने भी उसके विरुद्ध पश्चिम में युद्ध छेड़ दिया। किन्तु दोनों कहानियों के अन्त भिन्न हैं। ईसाईयत पश्चिम में मूर्ति पूजा को समाप्त कर देने में सफल हो गई और जो कुछ रोमन कैथोलिक चर्च में बचा हुआ है, वह मूल प्रारम्भिक स्थिति की छाया मात्र ही है। किन्तु भारत में, विदेशी निर्दयी आक्रान्ताओं के लगातार सतत् अत्याचारों और यातनाओं के होते हुए मूर्तिपूजा अभी भी जीवित है और उत्साह, शक्ति और सजीवता के साथ बिना किसी भी धार्मिक आन्दोलन के पुनः विकसित हो गई है। **दूसरी ओर, कुरान के सिद्धान्तों के साथ, इस्लाम पूरी तरह महत्त्वहीन व निरर्थक सिद्ध हो गया है। यह शक्ति साधकों के नारे मात्र रह गया है,** और तथ्य पूरी तरह प्रमाणित करते है, जैसा कि अफगानिस्तान और पाकिस्तान के पिछले इतिहास से सिद्ध हुआ है।

ऐसा क्यों है कि ये तथा-कथित एकेश्वरवादी पंथ-इस्लाम और ईसाईयत—मूर्ति पूजा को अनाथ व निराश्रित क्यों बना देना चाहते हैं? पहले तो ये दोनों ही पंथ वास्तव में अधिनायकवादी हैं। ये दोनों ही पंथ विश्वास करते हैं कि राज्य का शासन, गॉड या अल्लाह का है। अतः इसका संचालन धर्म तन्त्री शासक-मुल्ला, मौलवी या पादरियों—द्वारा होना चाहिये। ईश्वर का एक होना एक आकर्षक, लुभावना और तर्क संगत विचार है किन्तु अल्लाह या गॉड को शक्ति के मद में अन्धा प्रदर्शित करना, उसका घोर अपमान ही है। पहले तो एकेश्वरवाद को पैगम्बर के एक मात्र माध्यम से प्रस्तुत करना एक घोर मज़ाक ही है। आप अपने को कुछ भी कहें, पैगम्बर प्रारम्भ से ही ईश्वरत्व का समान भागीदार रहा आया है। उदाहरण के लिए, केवल अल्लाह में विश्वास करना काफ़ी नहीं है, जब तक कि मुहम्मद में पूर्ण विश्वास को साथ-साथ न जोड़ दिया जाये। **यदि अल्लाह सर्वशक्तिमान और सम्पूर्ण है, तो मुहम्मद में भी साथ-साथ विश्वास करना, बहुदेवतावाद या शिर्क का ज्वलन्त उदाहरण है।** इतना ही नहीं, पैगम्बर सदैव ही अपने परिवार के सदस्यों पर दैवत्व प्रदान करता है, और इस प्रकार बहु देवमण्डल निर्माण कर देता है। भारत उपमहाद्वीप में, सैय्यदों को देखो जिन्हें अपने मुस्लिम अनुयायियों के सन्दर्भ में, मध्यस्थता के अधिकार प्राप्त हैं। जो मुसलमानों के लिये व्यवहार में आता है, वही ईसाईयों के लिये भी उतना ही सच है। पोपों में भी यद्यपि अधिकांश सांसारिक शासक मात्र हैं किन्तु उन्हें पूर्णतः निर्दोष कहा जाता हैं; हालाँकि

Scanned by CamScanner

उनकी पत्नियाँ भी थीं और नाजायज़ बच्चे भी। जीज़स बढ़कर ईश्वर का एकमात्र पुत्र हो गया और बहुत से ईसाईयों का विश्वास है कि वह ईश्वर का अवतार ही था।

ऐसा क्यों है कि ये तथा-कथित एकेश्वरवादी, बहुदेवतावाद का विरोध करते हैं? यह इसलिये है कि एकेश्वरवाद से एक ही व्यक्ति में सारी शक्तियाँ केन्द्रित कर देने के कारण **'सब पर हावी होने की चाह'** का उद्देश्य पूरा हो जाता है। यह अपनी व्यक्तिगत शान दिखाने और पूजा कराने के लिये मानव की ईर्ष्या का ही प्रगटीकरण है। दूसरी ओर बहुदेवता वाद, बहुत से देवताओं जो सभी समान रूप से पवित्र होते हैं, में विश्वास का समर्थन करता है, यही कारण है कि यदि एक राजा धर्म के अनुसार राज्य करने में असफल रहता है, अथवा सन्तानहीन होकर मर जाता है, तो वैदिक समाज उसके स्थान पर नए राजा के निर्वाचन के लिये आग्रह करता है।

दुष्टों का दमन करने की अपेक्षा, ईश्वर को प्रसन्न करने के लिये, अधिक पाप किये गये हैं। मुस्लिम आक्रमणकर्ताओं द्वारा हिन्दू मन्दिरों के विनाश का कार्य, आंशिक रूप में, अपनी शक्ति और धन की ललक को पूरा करने के लिये, और आंशिक रूप में अपनी धर्मान्धता के कारण ही किये गये थे। यही कारण था कि महमूद गजनवी की अनेकों बार भारत पर आक्रमण करने की इच्छा हुई। यद्यपि उसके अभियान निन्दनीय व घृणित थे, फिर मैं अपने हिन्दू पूर्वज बाप दादाओं की प्रशंसा नहीं कर सकता कि उन्होंने पौरुष और शक्ति प्रदर्शन के वैदिक सिद्धान्तों को त्याग कर पूरी तरह, अहिन्दू अवधारणा, अहिंसा के पुजारी हो गये। मैं इस महा पीड़ाकारक अपमान को सहन करना बेहद कठिन पाता हूँ और स्वीकार करता हूँ कि चिड़िया की, बाज़ के हाथों मृत्यु निश्चित है। **हमें याद होना चाहिये कि बाज़ एक वैदिक पक्षी होने के कारण क्षत्रियों की शक्ति का प्रतीक होता है। हिन्दुओं ने चिड़ियों की भाँति व्यवहार करके स्वयँ ही अपना विनाश आमन्त्रित किया है। एक राष्ट्र जो अपनी बाज़ समान की प्रकृति को छोड़ देता है, निश्चय ही पीड़ित और अपमानित किया जाता है, उसका अङ्ग भङ्ग और वध कर दिया जाता है, जैसा कि महमूद गज़नवी, जूना खान, और फीरोज शाह तुगलक जैसे विनाश एवम् विध्वन्स के प्रतिनिधियों ने अत्याचार किए।**

ईसाईयों ने भी पश्चिम में बहुदेवतावाद के विरुद्ध वैसा ही व्यवहार किया

Scanned by CamScanner

था। उन्होंने मूर्ति पूजकों के मन्दिर बन्द कर दिये और उनकी सम्पत्तियां जब्त कर लीं। कौन्सटैंटिन ने मूर्ति पूजकों की याज्ञिक क्रियाओं को हतोत्साहित किया। कौन्सटौस ने एक पग और आगे बढ़कर मृत्यु पर दुख प्रगट करना भी बन्द करा दिया। कौन्स्टेंटिस ने मूर्ति पूजकों के सभी मन्दिरों और उनके कर्मकाण्डों को बन्द कर दिया। जिन्होंने विरोध किया वे सब उसके आदेशानुसार मार दिये गये। तथापि इन बाइजैंण्टियन राजाओं का एक उत्तराधिकारी सल्फावियस क्लौडियस जुलियेनस हुआ जिसका जन्म 332 ए.डी. में हुआ था, जो न केवल एक कुशल प्रशासक और सैनिक था, वरन् एक दार्शनिक भी था। उसने एकेश्वरवाद के आधारभूत सिद्धान्तों का उपहास किया और मन्दिरों में मूर्तियों की पूजा को उचित ठहराया। उसने बहुदेवतावादी मूर्तियों के देवताओं को अव्यक्तिगत शक्तियों के रूप में समझा। मगर उनके मानव रूप आकृतियों में विश्वास व्यक्त नहीं किया। उसने अपने आप को सम्राट कहलाने के बजाय बहुदेवतावादियों का पुजारी कहलवाना अधिक पसन्द किया। कम से कम अपने शासन काल में उसने ईसाईयत के ज्वार को रोक दिया। उसके लिये, उसने चर्चों से, शासकीय अनुदान वापिस ले लिये और विश्व विद्यालयों में ईसाईयों का दर्शन, अलङ्कार शास्त्र, और साहित्य के पीठाधीश्वरों को अध्यापन करने से रोक दिया। उसने आग्रह किया कि इन विषयों को बहुदेवतावादी (पैगन) ही पढ़ाने के लिए आगे बढ़ें। उसने उन ईसाई चर्चों के विध्वंस को भी अनुमति दे दी जो बहुदेवतावादियों के विध्वन्स किये गये मन्दिरों की भूमियों पर बनाई गईं थीं। उसने बहुदेवतावादियों के मन्दिरों व संस्थाओं की क्षति पूर्ति के लिये ईसाईयों पर कर भी लगाये। उसके आदेशों के विरुद्ध उपद्रव भी हुए, किन्तु वह दृढ़ रहा आया और सफल हुआ।

हिन्दू क्या करें ?

यहाँ एक उदाहरण है जिसका हिन्दू अनुसरण करें। **बहुदेवतावाद हिन्दुओं का जाति स्वभाव है। वे अपने जीवन के आधारभूत सिद्धान्तों पर स्थिर रहें वर्ना वे सम्मान से नहीं रह सकेंगे, विशेषकर जब कि वे किसी के लिये भी अहितकर व आघातकारी नहीं हैं।** यद्यपि मैं मूर्ति पूजक नहीं हूँ, मैं मानव अधिकारों का समर्थक हूँ कि वे जैसे चाहें पूजा-आराधना करें। दूसरों पर हावी होने की भावना मानव अधिकारों के लिए सबसे बड़ी बाधा है। इसका एक दूसरा पहलू

Scanned by CamScanner

भी है; भौतिक पदार्थों की भाँति मनोविज्ञान भी ध्रुवीय होता है जिसमें नकारात्मक और सकारात्मक पहलू भी होते है; जैसे मनुष्य विनम्र और कठोर, समझदार और मूर्ख और उग्र और विनीत भी होते हैं। इसी प्रकार प्रभावशीलाता और सहयोग-शीलता मानव व्यवहार के परस्पर विरोधी ध्रुव हैं। यद्यपि दोनों के अपने गुण हैं। लेकिन जब हावी होने की प्रवृत्ति (प्रभुत्वशीलता) का उद्देश्य दूसरों के सम्मान, सुरक्षा, स्वतन्त्रता के मूल्य पर शक्ति का उपभोग करना ही रहता है तो वह सबसे बड़ा दोष, जो भी सम्भव हो सके, हो जाता है।

दूसरी ओर विनम्रता या सहनशीलता, प्रभुत्व के इच्छुक आक्रान्ता का सामना या उससे संघर्ष न करने पर उससे भी बड़ा दोष हो जाता है क्योंकि इसके कारण आक्रमणकर्ता अधिक साहसी, दानवी, और विनाशकारी हो जाता है। जुझारुपन के अभाव में एक भेड़िया, भेड़ मात्र ही है जो भोजन की मेज़ पर आहार के लिये ही उपयुक्त होता है। **एक राष्ट्र जो अपनी रक्षा के लिये आत्म विश्वास खो देता है, फुटबाल की तरह हो जाता है जिससे जो चाहे, जैसे चाहे, खेले यानी कि उसे हर गधा-घोड़ा ठोकर ही मारेगा। अहिंसा को जीवनादर्श बनाकर हिन्दुओं ने अपने आपको प्रत्येक आक्रमणकर्त्ता को लालच भरा निशाना बना दिया है। यह कोई धार्मिक गुण नहीं है, वरन् अपवित्रता का द्योतक है तथा एक अति निन्दनीय दोष को सर्वश्रेष्ठ गुण के रूप में अधिष्ठित करने का प्रयास मात्र है। देवता अपने भक्तों को कायरों को रूप में नहीं चाहते; वे वैदिक देवता, अपने देश भक्तों, जो सम्मान की भावना से युद्ध करते हैं, को ही आशीर्वाद देते हैं।**

उपर्लिखित समीक्षा की पाद टिप्पणी के रूप में यहाँ यह लिखना चाहूंगा कि यह शोध प्रबन्ध बहुत समय से मेरे मन-मस्तिष्क को बेचैन कर रहा था। किन्तु कागज पर लिख देने के लालच को मैं रोके रखा था क्योंकि मैं पुराने घावों को कुरेदना नहीं चाहता था। कुछ देश भक्त हिन्दू विद्वानों के लेखों को पढ़कर मैंने अपनी भूल का अनुभव किया कि वे घाव भरे नहीं हैं वरन् और अधिक गहरे हो गये हैं। यद्यपि यह पीड़ा कारक है किन्तु यह पुनर्जागरण एक नये जीवन का ही चिन्ह है। **क्योंकि वे भावनाहीन व्यक्ति ही होते हैं जो अपने 1000 वर्षा के अपमानों को भूल जाते हैं जबकि जीवन सम्पन्न लोग, दृढ़ निश्चय और विजय की आकांक्षा पर आधारित सम्मान पूर्ण चरित्र-द्वारा पुनः जागृत होने की आकांक्षा करते हैं।**

Scanned by CamScanner

हिन्दू मंदिरों को विनाश

"तुमने सदियों के आघातों को सहन किया है केवल इसलिये कि तुमने इस विषय में विशाल चिन्ता बनाये रखी, और इसके लिये सभी कुछ की बलि भी दे डाली। तुम्हारे पूर्वजों ने बड़े साहस के साथ सभी कुछ सहा, हर प्रकार की यातनायें झेलीं यहाँ तक कि, मृत्यु भी स्वीकार कर ली किन्तु अपने धर्म को सुरक्षित बनाये रखा। विदेशी आक्रान्ताओं ने एक के बाद एक मन्दिर तोड़ा किन्तु जैसे ही आक्रमण की आँधी साफ़ हुई तो मन्दिर का शीर्ष पुनः खड़ा कर दिया जाता था। इनमें से दक्षिण भारत के कुछ प्राचीन मन्दिर और गुजरात के सोमनाथ जैसे मन्दिर तुम्हें अपार बुद्धिमत्ता की शिक्षा देंगे और इनसे तुम्हें देश, धर्म, एवं हिन्दू समाज के इतिहास की गहनतम दृष्टि अनेकों पुस्तकों की अपेक्षा कहीं अधिक प्राप्त हो जायेगी। ध्यान से देखो। इन मन्दिरों ने किस प्रकार सैकड़ों आक्रमणों के आघातों के चिह्नों को सम्हाला हुआ है यानी कि उन पर सैकड़ों आक्रमणों के चिह्न अङ्कित हैं, और सैकड़ों पुनर्निर्माणों के भी चिह्न अङ्कित हैं; वे निरन्तर ध्वंस किये जाते थे और ध्वंसावशेषों से नवजीवन युक्त और सदैव की भाँति निरन्तर पुनर्जीवित होते रहते थे।"

(स्वामी विवेकानन्द, कम्पलीट वर्क्स, खण्ड III, पृ. 289)

"इस प्रकार मूर्तियों और मन्दिरों के सन्दर्भ में पैगम्बर की परम्परायें या सुन्नाह को कुरान के उद्देश्य पूर्ति के लिये निर्देशनों में जोड़ दिये गये और मूर्ति भञ्जन सम्बन्धी इस्लामी धर्मशास्त्र सम्पूर्ण हो गया। तभी से मूर्ति भञ्जन इस्लामी धर्मशास्त्र का प्रमुख और स्थाई अङ्ग हो गया है। अल्लाह ने मूर्तियों और उनकी पूजा की निन्दा की थी और उसे घृणास्पद कहा था। उसके पैगम्बर ने मूर्तियों को तुड़वा या जलवा दिया और उनके मन्दिरों का ध्वन्स करा दिया।

स्वयं पैगम्बर ने कुछ नये अर्थ भेद जोड़ दिये। उसने पूजकों के भग्न मन्दिरों के स्थलों और सामग्री को, उसी स्थल पर मस्जिदें प्रस्थापित करने के लिये प्रयोग करवा दिया। अनेकों मामलों में मन्दिरों की मूर्तियों को मस्जिदों की सीढ़ियों में लगवा दिया ताकि विश्वासी (मुसलमान) मस्जिदों में घुसते और उनसे निकलते समय मूर्तियों को पैरों तले कुचल सकें। ये कर्म भी पवित्र बन गये जिनका इस्लामी आक्रान्ताओं ने जहाँ कहीं मूर्तियों को देखा इसी अभ्यास का पूरी तरह से अनुसरण किया।

इस्लाम के संसार में बहुत कम ऐतिहासिक मस्जिदें, विशेषकर जामा मस्जिदें हैं, जो उन स्थलों पर खड़ी हुई न हों, जहाँ प्रारम्भ में किसी अन्य पंथ के पूजा ग्रह न रहे हों। बहुत सी ईसाई चर्चों के मूल स्थानों पर भी मस्जिदें

Scanned by CamScanner

स्थान पा गई हैं। यह सब ऐसा सम्पूर्ण पश्चिम एशिया, उत्तरी अफ्रीका, स्पेन, दक्षिणी यूरोप में हुआ है यद्यपि ईसाई भी किताब वाले लोगों में ही थे जिनके पूजा स्थलों की रक्षा की जानी थी, यदि वे धिम्मी बनना स्वीकार कर लें। मुस्लिम विजय के समय जो सारे ईरानी साम्राज्य कहलाता था वहाँ के निवासियों जोरोस्ट्रियन्स के अग्नि मन्दिरों की भी वही दशा हुई यानी कि उनका विध्वन्स कर उनके स्थान पर मस्जिदें खड़ी कर दी गईं तथापि सर्वाधिक विनाश लीला तो हिन्दू संस्कृति के विशाल क्षेत्रों में हुई वहाँ लाखों बुद्ध विहारों, जैन मन्दिरों और हिन्दू मन्दिरों का भयावह विशाल स्तर पर विनाश हुआ और उन्हें छिपाकर मस्जिदें, ईदगाह आदि मुस्लिम स्मारक खड़े कर दिये गये। एशिया रूस के गण राज्यों व चीन के सिन्क्याङ्ग प्रान्त में अब एक भी हिन्दू मंदिर उपलब्ध नहीं है। ईरान के मकरान और सीस्तान प्रान्तों में और सारे अफगानिस्तान में, जहाँ सर्वत्र मन्दिर हुआ करते थे, एक भी हिन्दू मन्दिर अवशिष्ट नहीं है। ब्रिटिश शासन काल में उस देश में जिसे अब पाकिस्तान और बङ्गला देश कहा जाता है, जो भी मन्दिर बने थे, शीघ्रता से विलीन होते जा रहे हैं। वैसा ही कश्मीर की घाटी में भी हो रहा है।

पुरातात्त्विक सर्वेक्षण ऑफ इण्डिया जिसमें 1947 तक पाकिस्तान और बङ्गला देश भी सम्मिलित था, ने काफ़ी मात्रा में मस्जिदों और मुस्लिम स्मारकों को चिह्नित कर रखा है जो या तो भग्न हिन्दू मन्दिरों के मूलस्थानों पर निर्मित हैं, खड़े हैं या जिनके निर्माण कार्य में मन्दिरों की सामग्री लगी हुई है। अनेकों, अरबी और फ़ारसी के शिला लेख स्पष्ट साक्षी हैं कि मस्जिदों के निर्माण के लिये हिन्दू मन्दिरों का विध्वन्स किया गया था। स्थानीय परम्पराओं के आधार पर और भी अनेकों मस्जिदों को प्रमाणित किया जा सकता है कि वे मन्दिरों के स्थानों पर उन्हें विध्वन्स कर खड़ी हैं। अनेकों शहरों जो उस समय मुस्लिम शासकों की राजधानियाँ हुआ करती थीं, में गाड़ियाँ की गाड़ियाँ भरकर, मन्दिर तोड़कर लाई गई मूर्तियों को, जामा मस्जिदों की सीढ़ियों में लगा दिया गया था। उनमें से कुछ मूर्तियाँ अभी भी उन मस्जिदों की सीढ़ियों में गढ़ी हुई उपलब्ध हो सकती हैं। संक्षेप में हिन्दू संस्कृति के सम्पूर्ण क्षेत्रों की कौन कहे, अभी इस भारत देश के ही क्षेत्र में मुस्लिम मूर्ति भञ्जन के अध्ययन का सार्थक प्रयास होना शेष है—(सीता राम गोयल ''हिन्दू टैम्पिल्स व्हाट हैपिण्ड टू दैम, खण्ड 2, पृ. 427-28)

Scanned by CamScanner